इकाई 20 रेखाचित्र : ठकुरी बाबा

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 रेखाचित्र के रूप में **ठकुरी बाबा**
20.3 **ठकुरी बाबा** में सामाजिक चेतना
20.4 **ठकुरी बाबा** की भाषा और शिल्प
20.5 **ठकुरी बाबा** का मूल्यांकन
20.6 सारांश

20.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रमों के चौथे पाठ्यक्रम **नाटक और अन्य गद्य विधाएँ** के पाँचवे खंड की यह पहली और पाठ्यक्रम की बीसवीं इकाई है। इस इकाई में छायावाद की महान् कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा लिखित रेखाचित्र **ठकुरी बाबा** का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई में एक रेखाचित्र के रूप में **ठकुरी बाबा** की विशिष्टता की पहचान कर सकेंगे। **ठकुरी बाबा** का महत्त्व क्यों है और वह महादेवी के दूसरे रेखाचित्रों से किस रूप में भिन्न है, इसको भी समझ सकेंगे।

ठकुरी बाबा साधारण अर्थ में रेखाचित्र ही नहीं है। महादेवी ने इसके माध्यम से ग्राम्य समाज के उस हिस्से की सामाजिक दशा का यथार्थ चित्रण किया है जो जीने के लिए जरूरी बुनियादी साधनों से भी वंचित है। लेकिन इसके बावजूद उनमें गहरी मानवीय सहानुभूति, करुणा, जीवन राग और कर्मठता मौजूद है। इस रेखाचित्र में व्यक्त सामाजिक चेतना की उक्त विशेषताओं को भी आप इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे।

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में भाषा और शिल्प का प्रयोग अत्यंत सावधानीपूर्वक किया गया है। रेखाचित्रों की शिल्पगत विशिष्टता और उसके भाषिक सौंदर्य को समझने में यह इकाई आपकी मददग।र होगी।

ठकुरी बाबा महादेवी का चर्चित रेखाचित्र न होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। अत्यंत विराट फलक और गहरी सामाजिक संवेदनशीलता इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। इकाई के अध्ययन से आप सामान्य तौर पर महादेवी के रेखाचित्रों को और खास तौर पर **ठकुरी बाबा** का सम्यक् मूल्यांकन करने में मदद मिलेगी।

20.1 प्रस्तावना

नाटक और अन्य गद्य विधाएँ नामक इस पाठ्यक्रम के पाँचवें खंड की यह पहली इकाई है। आपने महादेवी वर्मा का रेखाचित्र **ठकुरी बाबा** को अवश्य पढ़ लिया होगा। अगर नहीं पढ़ा है तो अवश्य पढ़ लें। इसके बाद आप इस इकाई को पढ़ेंगे तो आपको इसे समझने में मदद मिलेगी। हमने पाठ्यक्रम-निर्देशिका में महादेवी वर्मा के लेखकीय व्यक्तित्व और रेखाचित्र की विशेषताओं के बारे में भी बताया है।

इस खंड में आप जिन इकाइयों का अध्ययन करने जा रहे हैं उनका संबध रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी और आत्मकथा से है। इस खंड की इस पहली इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा लिखित **ठकुरी बाबा** के बारे में पढ़ेंगे। **ठकुरी बाबा** काल्पनिक चरित्र नहीं है बल्कि इस रेखाचित्र में आए सभी चरित्र वास्तविक हैं और जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे भी वास्तविक हैं। महादेवी वर्मा अपने जीवन में आए कुछ ऐसे लोगों को अपने रेखाचित्रों का पात्र बनाती हैं जो सामाजिक दृष्टि से अत्यंत गरीब, अशिक्षित और साधारण होते हैं। लेकिन उनके जीवन में बहुत कुछ ऐसा है जो लेखिका को उस समाज में दिखाई नहीं देता जो शिक्षित, सम्पन्न और विशिष्ट लोगों का है। इन साधारण लोगों के जीवन की असाधारणता को उभारने और अपने हृदय की संपूर्ण संवेदना और रचनात्मक ऊर्जा के साथ उन्हें शब्दबद्ध करने का प्रयास ही हमें महादेवी के रेखाचित्रों में दिखाई देता है।

महादेवी वर्मा ने कई सारे रेखाचित्र लिखे हैं। **ठकुरी बाबा** उनमें से एक है। यह रेखाचित्र कई दृष्टियों से उनके अन्य रेखाचित्रों से अलग भी है और विशिष्ट भी। इकाई में इसके इस पक्ष पर विचार किया गया है। लेखिका ने रेखाचित्र में जो शैली अपनाई है और भाषा का जैसा प्रयोग किया है, आप उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेकिन आपको यह भी विचार करना है कि इस रेखाचित्र की भाषा और उसके शिल्प में वे कौन-सी बातें हैं जिनसे यह रेखाचित्र इतना प्रभावशाली बन सका है।

इस रेखाचित्र का नाम **ठकुरी बाबा** है। लेकिन उसमें सिर्फ **ठकुरी बाबा** ही नहीं है। अन्य कई पात्र हैं जिनका अपना व्यक्तित्व है, अपनी कथा है, अपने दुख हैं। इन सब पात्रों के जीवन से मिलकर जो समाज हमारे सामने आता है, उनकी तकलीफें और उनके दुख हमारे सामने आते हैं तो हमारा हृदय करुणा से विगलित हुए बिना नहीं रहता। यह करुणा निष्क्रिय सहानुभूति पैदा करने वाली करुणा नहीं है बल्कि हमें अपने समाज के अंतर्विरोधों को समझने की चेतना और दृष्टि देने वाली करुणा है। वह हमें निष्क्रिय नहीं बनाती सक्रिय बनाती हैं। **ठकुरी बाबा** का मूल्यांकन उसकी इस भूमिका के संदर्भ में भी करना चाहिए।

ठकुरी बाबा का अध्ययन आप ऐसे समय करने जा रहे हैं जबकि उस समाज की चिंता और उनके प्रति सहानुभूति मध्य वर्ग में कम होती जा रही है। **ठकुरी बाबा** में महादेवी ने उस शिक्षित समाज की कमज़ोरियों को भी दर्शाया है जिसके कारण **ठकुरी बाबा** और उनके संगी-साथियों का व्यक्तित्व असाधारण बनकर उभरता है। **ठकुरी बाबा** जैसे लोगों के बारे में आज समाज ने चिंता करना छोड़ दिया है। क्या यह सामाजिक दृष्टि से श्रेयस्कर है? ठकुरी बाबा हमारे समाज की इस ऐतिहासिक विडम्बना को भी उजागर करता है।

आप इस इकाई के अध्ययन से **ठकुरी बाबा** के अध्ययन का सही परिप्रेक्ष्य पा सकेंगे, ऐसी आशा है।

20.2 रेखाचित्र के रूप में 'ठकुरी बाबा'

कहानी, उपन्यास, नाटक और प्रबंध काव्य की तरह स्केच अथवा रेखाचित्र में भी पात्र होते हैं। महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में प्रायः एक ही केंद्रीय पात्र होता है। अपने संपर्क में आए लोगों की स्मृतियों को वे सिलसिलेवार ढंग से एक घटनापूर्ण आख्यान के रूप में व्यवस्थित करती हैं ताकि केंद्रीय पात्र के चरित्र के आंतरिक और बाह्य पहलुओं पर ठीक से रोशनी पड़ सके और पाठक उसके व्यक्तित्व के आर-पार झाँक सके।

ठकुरी बाबा नामक रेखाचित्र को ही देखिए। ध्यान से पढ़ने पर आपको पता चलेगा कि महादेवी ने प्रसंग तो शुरू किया है अपने कल्पवास के अनुभव का, और प्रकारांतर से भक्तिन के चरित्र

के भी कुछ पहलू उजागर होते चलते हैं, पर उनका वास्तविक अभिप्रेत है - ठकुरी के चरित्र का रेखांकन। यद्यपि बीच-बीच में कल्पवास से संबंधित धार्मिक रिवाज और प्रथा की पुरातन युगीन मूल प्रेरणा का तात्पर्य भी प्रस्तुत किया गया है, पर ठकुरी से संपर्क की कहानी शुरू होते ही लेखिका का पूरा फोकस उस पात्र के व्यक्तित्व पर केंद्रित हो जाता है।

महादेवी के कल्पवास की कुटिया में संक्राति के एक दिन पहले संध्या समय ग्रामीण यात्रियों का एक दल आ घुसा। एक बूढ़े सज्जन कल्पवास के रैनबसेरे में ठहरने की अनुमति माँगने लगे। वे अकेले न थे - पूरी एक टोली थी उनके साथ। ठहरने की अनुमति मिल गई। चूँकि वृद्ध सज्जन का स्वर स्नेहसिक्त था और उसमें आत्मीयता भी थी। लेखिका की पर्णकुटी कोलाहल से परिपूर्ण हो गई। इस बूढ़े बाबा ने पर्णकुटी के बरामदे में अपना पूरा आडम्बर फैला लिया। फटी और अनिश्चित रंग वाली दरी, दूसूती का बिछौना, मैले फटे कपड़ों की गठरी, लाल चिलम का मुकुट पहने नारियल का काला हुक्का, सुरती का बटुआ, काली मिरजई, तैल स्नान से चिकनी बनी गाँठदार लाठी और निवाड़ से बनी खटपटी।

रेखाचित्रकार ने बूढ़े बाबा के सामान के साथ उनका हुलिया भी पेश कर दिया। 'सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आँखों में विषाद, चिंतन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना संभव नहीं। लंबी नाक के दोनों और खिंची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं।'

नंगे पाँव और घुटनों तक ऊँची धोती पहने इस बूढे बाबा की लंबी सफेद दाढ़ी के बीच कुछेक काले बाल विचित्र-सा आकर्षण पैदा करते थे। यही थे **ठकुरी बाबा**। वे भाट वंश में पैदा हुए थे। चारणों की परम्परा के अवशिष्ट थे वे, अतः उनका धंधा 'व्यक्तिगत मनोविनोद' मात्र रह गया था। पैतृक धंधे के रूप में प्राप्त इस काव्य-कला के कारण वे दुनियादार आदमी कभी बन ही न सके। यही कारण था कि पैतृक सम्पत्ति और ज़मीन-जायदाद की कभी फिक्र ही नहीं की और सौतेले भाइयों ने सांसारिकता से उन्हें अलग ही रखा। भौजाइयों ने ठकुरी की पत्नी की निंदा का अभियान जारी रखा ताकि उसकी गर्दन पर मेहनत-मशक्कत का कठोर जुआ लादा जा सके। रेखाचित्रकार महादेवी की टिप्पणी है - 'ठकुरी बेचारे कवि ठहरे। शुष्क यथार्थता उनकी भाव-बोझिल कल्पना के घटाटोप में प्रवेश करने के लिए रंध्र ही न पाती थी।'

काव्य-जनित अकर्मण्यता, भाइयों की उपेक्षा, भौजाइयों की व्यंग्य-वाणी आदि उनकी पत्नी की मर्म-पीड़ा का कारण थी। पर ठकुरी इसे भी न समझ पाते थे। वह इस लगातार उपेक्षा और यातना के बीच डेढ़ वर्ष की बालिका को छोड़कर प्रसूति-ज्वर से पीड़ित होकर अपने कठोर जीवन से मुक्त हो गई। पत्नी की मृत्यु के बाद ही वे वास्तविक पति और पिता बन सके। बेटी बेला के लिए वही बाप भी थे और माँ भी। दुर्भाग्य ऐसा कि जवान होते न होते बेला का पति चेचक के कारण अंधा हो गया। ससुर ने अंधे दामाद को भी काव्य की शिक्षा दे दी और घर चलाने के लिए जिस बूढ़ी मौसी को ठकुरी अपने घर ले आए, वह भी इसी काव्य-संगीत मंडली का हिस्सा बन गईं।

ठकुरी चिकारा बजाकर भक्ति के पद गाते हैं, दामाद खंजरी पर तान संभालता है, बूढ़ी मौसी तन्मय होकर मंजीरा झनकार देती है और बेला घर का झंझट सिर पर ओढ़े भागती-दौड़ती रहती है। ठकुरी के घर पर अब एक भैंस, दो पछाहीं गायें और थोड़ी-बहुत खेती है। अतः जीवन-यापन की मूलभूत समस्या अब उन्होंने हल कर ली है। लेकिन **सहज स्वभाव** और **गहरी इन्सारी रिश्तेदारी** के कायल**ठकुरी बाबा** पूरे मस्तमौला और फक्कड़ थे। कोई गुड़ की एक डली के बदले उनसे आधा सेर आटा ले जाता है, कोई चार मिर्च देकर आलू शकरकंद का फलाहार पा जाता है, कोई तोला भर दही के बदले कटोरा भर चावल उड़ा ले जाता है और रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध मांग लेता है। दूसरों को देने में, दूसरों की ज़रूरत के

वक्त काम आने में ठकुरी को एक विशेष प्रकार का सुख मिलता है। 'वह भावुक और विश्वासी जीव हैं।' चिकारा हाथ में लेते ही उनके लिए संसार का अर्थ बदल जाता है। उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि ग्रामीण जीवन की सहजता के लक्षणों के वे मूर्तिमान अवतार हैं।

कल्पवास के लिए वे जिस कुटुम्ब या टोली को साथ लाए हैं, उनमें विधवा ठकुराइन हैं जो परिवार की उपेक्षा के कारण ठकुरी की सहज अनुकम्पा पाकर फूली न समातीं, अपने पति से उपेक्षित एक सहुआइन हैं जो दो किशोर बालकों को पालने के लिए कठिन संघर्ष से गुज़र रही हैं। इन दोनों के बाद ठकुरी के कुटुम्ब में एक विधुर काछी अपनी दो बेटियों के साथ मौजूद हैं। इनके अतिरिक्त, एक ब्राह्मण दम्पत्ति भी हैं।

भक्तिन और ठकुरी समेत पूरा कुटुम्ब कल्पवास की अवधि में माघी पूर्णिमा के पहले आने वाली त्रयोदशी की रात लेखिका के यहाँ भजन-कीर्तन का आयोजन करता है। ठकुरी चिकारा की खूंटी ऐंठ रहे थे, अंधा दामाद खजड़ी बजा रहा था, बेला आरती-फूलबत्ती आदि का काम संभाले थी। सब मिल-जुलकर गीत गाती हैं। औरतें भक्ति के गीत गाती हैं और ठकुरी ने अपने गीत सुनाए। सबको एक ही स्पंदन, एक ही पुलक और समान भावधारा ने बाँध रखा था। ग्रामीण जनों की स्वाभाविक शिष्टता, रस-विदग्धता और उनकी कर्मठता की तुलना में महादेवी ने शहरों में होने वाले कवि-सम्मेलनों की कृत्रिमता, उनके बाज़ारूपन और फूहड़पन पर भी बेबाक टिप्पणी की है। उनका कहना है - 'हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानन्द छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन' है। ठीक इसके विपरीत, भाट वंश में पैदा हुए गाँव गंवई के आशु कवि ठकुरी हैं। महादेवी कहती हैं कि उनसे अधिक सहृदय व्यक्ति उन्होंने कम ही देखे हैं। ठकुरी जैसे लोगों का 'बाह्य जीवन दीन है', पर अंतःजीवन संवेदनापूर्ण और समृद्ध है। ठकुरी गाँव के सहृदय समाज के प्रतिनधि हैं। रेखाचित्रकार की दृष्टि में 'उनकी सहृदयता वैयक्तिक विचित्रता न होकर ग्रामीण जीवन में व्याप्त सहृदयता को व्यक्त करती है।' नागरिक शिष्ट समाज में जैसे फीस लेकर कविगण सभा-सम्मेलन में पहुँचते हैं, ठकुरी इसके विपरीत कहीं विरहा गाने पहुँच जाते, कहीं आल्हा-ऊदल की कथा सुनाने मीलों पैदल जाने में भी न सकुचाते। तभी तो अर्थ की दृष्टि से कवि ठाकुरदीन सुदामा ही रह गए। **ठकुरी बाबा** को उनकी काव्य-कला का पुरस्कार क्या मिलता था? पथरौटी में सत्तू पर नमक के साथ हरी मिर्च और अंगोछे के खूंट में थोड़ा तिलगुड़।

इधर, दो वर्ष से वे मेले में नहीं आए। दो वर्ष पूर्व जब वे आए थे तो शिथिल पड़ चुके थे। कंठ में लोच तो था पर कफ़ की घरघराहट उनके स्वर को बेसुरा बना देती थी। 'आँखों में ममता का वही आलोक था', पर जर्जर काया पर काल ने अपनी सर्वग्रासी छाया डाल दी थी। ठकुरी बोले अब चला-चली की बेला है। महादेवी ने पूछा - 'तुम स्वर्ग में कैसे रह सकोगे बाबा? वहाँ तो न कोई तुम्हारे कूट पद और उलट-बाँसियाँ समझेगा और न आल्हा-ऊदल की कथा सुनेगा। स्वर्ग के गंधर्व और अप्सराओं में तुम कुछ न जँचोगे।' ठकुरी ने जवाब दिया कि इस हकीकत से वे परिचित हैं। अतः वे वहाँ इतना शोर मचाएंगे कि भगवान जी उन्हें पृथ्वी की ओर ढकेल देंगे। तब पृथ्वी पर पुनः आकर वे धान रोपेंगे, क्यारियाँ बनाएँगे, चिकारा बजाएंगे और पूरे समाज को आल्हा-ऊदल की कथा सुनाएंगे। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, पर नया शरीर माँगने के लिए वहाँ जरूर जाएंगे क्योंकि यह कम्बख्त शरीर तो जर्जर हो चुका है। और इतना कहने के बाद ठकुरी तन्मय होकर गाने लगे - 'चलत प्रान काया काहे रोई राम।' महादेवी की स्मृति में उनके द्वारा गाया गया दूसरा गीत भी झंकृत हो उठता है - 'जागिए कृपानिधान पंछी बन बोले'। रेखाचित्रकार को ऐसा प्रतीत होता है मानो इस प्रभाती के द्वारा वे जागरण का संदेश दे रहे थे।

पूँजीवादी व्यक्तिवाद के युग की अंध भाग-दौड़ के बावजूद हमारे गाँवों और कस्बों में ठकुरी जैसे सहृदय और संवेदनशील लोग हज़ारों की तादाद में मौजूद हैं। सामूहिक सहृदयता और सहज मानवीयता के प्रतीक के रूप में ठकुरी का चरित्र एक प्रतिनिधि चरित्र है - वह अनूठा व्यक्तित्व है, पर उसके व्यक्तित्व के हर रंग, रेशे और पहलू पर सामूहिकता की छाप है। एक

पात्र के रूप में ठकुरी के व्यक्तित्व को रेखांकित करने में महादेवी के गद्य की वर्णनात्मकता में ही उनकी कला की शक्ति अंतर्निहित है। ठकुरी का पूरा नाक-नक्श, हुलिया, वेशभूषा, रहन-सहन, परिवार, कुटुम्ब और जीवन-संघर्ष मूर्तिमान होकर सामने आता है। रेखाचित्र के एक पाठ के बाद ही केंद्रीय पात्र के रूप में ठकुरी मन में अंकित हो जाते हैं और अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़ जाते हैं।

20.3 'ठकुरी बाबा' में सामाजिक चेतना

संस्मरणात्मक रेखाचित्र एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें समाज की वास्तविकताओं से लेखक या लेखिका की टकराहट, तमाम तरह के लोगों से संबंध और संपर्क की अंतःक्रिया उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ अनिवार्यतः व्यक्त होती है। महादेवी वर्मा अपनी कविताओं तथा अपने गीतों में यथार्थ के साथ अपनी टकराहट पर आवरण डाल देती हैं, पर रेखाचित्रों में ऐसा कर पाना संभव नहीं है। इसीलिए महादेवी के संबंध में यह भ्रम फैला कि वे कविताओं में तो रहस्यवादी हैं, पर रेखाचित्रों में यथार्थवादी है। दरअसल दो अलग-अलग प्रकार की साहित्यिक विधाओं में लिखी जाने वाली रचनाओं में विवेचन विश्लेषण के लिए जिस गहरी परख और अलग-अलग प्रकार के औज़ारों की ज़रूरत है उसे नज़रअंदाज़ करने के कारण ही यह भ्रांति फैली।

प्रायः सभी छायावादी रचनाकार सन 1930 के बाद गद्य-लेखन की आवश्यकता को गंभीर दायित्व के रूप में लेने लगे थे। निराला के उपन्यासों और कहानियों, प्रसाद के उपन्यासों और कहानियों तथा सुमित्रानन्दन पंत की कहानियों में यथार्थ चित्रण की वही प्रवृत्ति मिलती है, जिसका प्रवर्त्तन प्रेमचंद ने 1918 में ही कर दिया था। सन 1930 तक आते-आते स्वाधीनता आंदोलन की विभिन्न धाराओं, खासकर - किसान, मज़दूर, युवा और स्त्री-समुदाय आदि के हितों के प्रश्नों पर उठ खड़े हुए जन-संघर्षों का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और यथार्थवाद की प्रवृत्ति कहीं अधिक परिपक्व और पुष्ट हुई। महादेवी के रेखाचित्र इसी जीवंत यथार्थवादी प्रवृत्ति की प्रेरणाओं और दबावों को बड़ी गहराई से दर्शाते हैं।

इस बात को रेखांकित करने की ज़रूरत है कि इन रेखाचित्रों के ये पात्र प्रायः ही दलित-वंचित और पीड़ित सामाजिक समूहों के बीच से आते हैं। निर्धन, विपन्न और प्रताड़ित चरित्रों का एक विशाल भंडार महादेवी की गद्य-कृतियों का प्राण है। सेवक रामा, सेविका भक्तिन, 'भंगिन' सबिया, साग-भाजी का विक्रेता अंधा अलोपी, कुम्भकार बदलू, पहाड़ी औरत लछमा, चीनी युवक, कुली जंग बहादुर और धनिया - आदि सभी ऐसे ही पात्र हैं जो अपने-अपने यथार्थ जीवन की विभीषिकाओं के साथ हिंदी साहित्य के चित्रागार में अमर हो गए हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से इतना तो आपको स्पष्ट हो ही गया होगा कि पात्रों के चयन में महादेवी की चेतना और मूल्य-दृष्टि किस तरह दलितों, वंचितों, प्रताड़ितों और उपेक्षितों की पक्षधर है। यह भी ज़ाहिर हो जाता है कि महादेवी की सामाजिक चेतना गाँव, कस्बे और शहर से ऐसे चरित्रों और व्यक्तियों को ढूँढकर पाठको के सामने लाती है जो शोषण और रूढ़िवाद, उत्पीड़न और अंधविश्वास, सामाजिक असमानता और सड़े-गले रीति-रिवाज के चंगुल में फंसकर तड़फड़ाते हैं तथा उनकी पीड़ा आपको बेचैन कर देती है। अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था और सड़े-गले रीति-रिवाजों पर रेखाचित्रकार की हैसियत से महादेवी की तीखी टिप्पणियों से यह न समझना चाहिए वे किसी राजनीतिक दल या विचारधारा की प्रेरणा से ऐसा कर रही थीं। वास्तविकता तो यह थी कि एक कलाकार के नाते उनकी संवेदना उन्हें विवश करती थी कि वे अपने वर्गीय संस्कारों की सीमा का अतिक्रमण करे और देश के गरीबों तथा पीड़ितों से अपने को जोड़े।

ठकुरी बाबा नामक रेखाचित्र में महादेवी गाँव-गँवई के एक ठेठ, अदना से, भाट वंश में अवतीर्ण निर्धन कवि ठाकुरदीन सुदामा अर्थात् ठकुरी से अपने को जोड़ती है। कृत्रिम ढंग से आयोजित शहरी कवि सम्मेलनों में ऊँची-ऊँची फीस लेकर काव्य-पाठ के लिए आने वाले कवि-समाज से भिन्न **ठकुरी बाबा** है जो किसी मचान पर बैठकर विरहा सुनाता है, बारहमासा के रसिक श्रोता को उसके बैलों का सानी-पानी देने के साथ-साथ काव्यानंद भी प्रदान करता है, होली पर कबीर सुनाने में अपनी भूख-प्यास भी भूल जाता है। ऐसे ही कवि को आप लोक-कवि या जन-कवि कहेंगे। महादेवी इस जन-कवि को अपेक्षित हमदर्दी और आत्मीयता के साथ रेखांकित करने में भी एक नए ढंग की सामाजिक चेतना को व्यक्त करती हैं अर्थात् कुलीन साहित्य के पाठक समुदाय को जन-जन के बीच प्रचलित साहित्य के सामाजिक आधार की महत्ता बताती हैं।

कहना चाहिए कि **ठकुरी बाबा** के माध्यम से कुलीन संस्कृति और जन-संस्कृति के बीच फर्क को पूरे तीखेपन के साथ उभारने में भी रेखाचित्रकार की यथार्थवादी और सकारात्मक सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है।

निजी सम्पत्ति को लेकर परिवार के अंदर ही किस प्रकार का भेदभाव और अन्याय होता है, इसे दिखाने के लिए उन्होंने ठकुरी के परिवार का दो-टूक ढंग से वर्णन किया है:

'ठकुरी के सौतेले भाई बड़े और गृहस्थी वाले थे, इसी से घर-द्वार सब उन्हीं के अधिकार में रहा और छोटा भाई चाकरी के बदले में भोजन-वस्त्र पाता रहा। उसका कवित्व भाइयों के लिए लाभप्रद ही ठहरा, क्योंकि कोई भी कला सांसारिक और विशेषतः व्यावसायिक बुद्धि को पनपने ही नहीं दे सकती और बिना इस बुद्धि के मनुष्य अपने आपको हानि पहुँचा सकता है, दूसरों को नहीं।'

छोटा भाई यदि कवि होने के नाते कमाऊ नहीं है तो कमाऊ बड़े भाई का नौकर-चाकर बनने को अभिशप्त है और उसकी पत्नी भी अपनी जेठानी की दासी बनने को विवश है। परिवार के अंदर के उत्पीड़न और स्वामी-दास संबंध को उद्घाटित कर महादेवी ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के प्रश्न को ही गंभीरता से उठाया है।

गाँव में भी इंसानियत का लोप होता जा रहा है और 'मनुष्यता को विकास के लिए अवकाश मिलना कठिन है' जैसे प्रश्न सामने रखकर महादेवी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद के प्रभाव के प्रवेश से उत्पन्न समस्या को उद्घाटित करती है। उदारता, सहज सौहार्द, सरल भावुकता आदि गुण पहले ग्रामीण जीवन के लक्षण माने जाते थे, पर अब वहाँ भी 'सुलभ नहीं रहे।' इस दुर्लभ गुण के प्रतीक हैं -**ठकुरी बाबा**। उनके साथ सहुआइन है, विधवा काछी है, ब्राह्मण दम्पत्ति हैं, वृद्धा ठकुराइन है और अंधा दामाद भी है। ठकुरी सर्वसुलभ हैं, सबकी मदद के लिए तैयार। उन्हें दूसरों की सहायता करने में ही विशेष प्रकार की आनंदानुभूति होती है। इस प्रसंग के चित्रण में आपने अनुभव किया होगा कि महादेवी परोपकार, उदारता, करुणा और परदुःख कातरता के पक्ष में हैं, न कि अंधी स्वार्थपरता और व्यक्तिवाद के पक्ष में। शिक्षित पेशेवर वर्गों अर्थात् अफसरों, वकीलों, डॉक्टरों, व्यापारियों तथा प्राइवेट कंपनियों में ऊँची तनख्वाह पाने वाले प्रशासनिक अधिकारियों को आप महानगरों और शहरी सभ्य समाज के रूप में देख सकते हैं। महादेवी इस खाते-पीते शिक्षित मध्य वर्ग तथा कुलीन समुदाय पर जिस तरह की टिप्पणी करती हैं, उससे उनके सामाजिक बोध और सामाजिक दृष्टिकोण का खुलासा होता है। **ठकुरी बाबा** में ही दो-टूक शब्दावली में उनका वक्तव्य है :

'हमारे सभ्यता-दर्पित शिष्ट समाज का काव्यानंद छिछला और उसका लक्ष्य सस्ता मनोरंजन मात्र रहता है।'

इतना ही नहीं ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के तहत जो असमान विकास की पूँजीवादी नीति अपनाई गई, उसी के परिणामस्वरूप ग्रामीण और शहरी समाज के बीच हर दृष्टि से अंतर होता गया। ग्रामीण समाज दैन्य और पिछड़ेपन की गिरफ्त में आता गया, और शहरी समाज विलासप्रियता तथा सस्ते आमोद-प्रमोद की प्रदर्शनप्रिय सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो गया।**ठकुरी बाबा** में पूँजीवादी सभ्यता के असमान विकास के अभिशाप से पीड़ित दो प्रकार की जीवन-प्रणालियों पर महादेवी ने अपनी गहरी सामाजिक चिंता व्यक्त की है :

'मेरी पर्णकुटी के दो बरामदे चांदनी से धुल गए थे - उनमें ठंडी ज़मीन, चादर, पुआल आदि पर जो सृष्टि सो रही थी, उसके बाह्य रूप और हृदय में इतना अंतर क्यों है, यही मैं बार-बार सोच रही थी। उनके हृदय का संस्कार, उनकी स्वाभाविक शिष्टता, उनकी रस-विदग्धता, उनकी कर्मठता आदि का क्या इतना कम मूल्य है कि उन्हें जीवन-यापन की साधारण सुविधाएँ तक दुर्लभ हो जावें।'

तथा,

'इन दोनों समाजों का अंतर मिटा सकना सहज नहीं। उनका बाह्य जीवन दीन है और हमारा अंतर्जीवन रिक्त। उस समाज में विकृतियाँ व्यक्तिगत हैं; पर सद्भाव सामूहिक रहते हैं। इसके विपरीत हमारी दुर्बलताएँ समष्टिगत हैं; पर शक्ति वैयक्तिक मिलेगी।'

इस सामाजिक बोध को और अधिक समझने के लिए **घीसा** और **मुन्नु की माई** नामक रेखाचित्र अवश्य पढ़ना चाहिए।

इसके अतिरिक्त, पुरुष-प्रधान पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों का जैसा उत्पीड़न होता है, उसके चित्रण में महादेवी की यथार्थवादी गद्य-कृतियाँ अपने संपूर्ण कलात्मक वैभव के साथ अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय देती हैं। ठकुरी बाबा में यद्यपि इस दृष्टि से सिर्फ ठकुरी की पत्नी के उत्पीड़न और सहुआइन के छोटे से पीड़ित परिवार का उल्लेख हुआ है, जिसमें उसके पति 'गाँव की तेली बालिका को लेकर कलकत्ते में कर्तव्य पालन कर रहे हैं। विवाहित जीवन के डबल सर्टीफिकिकेट के समान दो-दो बिछुए पहनकर और नाक तक खिंचे घूघट में वधू वंश की मर्यादा को सुरक्षित रखकर वे परचून की दूकान द्वारा जीवन-यापन करती है।'

'हर माघ में वे अपने दो किशोर बालकों के साथ आकर कल्पवास की कठोरता सहती है और कमर तक जल में खड़ी होकर भावी जन्मों में साहूजी को पाने का वरदान माँगती है। पति ने उनका इहलोक बिगाड़ दिया है, पर अब उसके अतिरिक्त किसी और की कामना करके वे परलोक नहीं बिगाड़ना चाहती।'

सहुआइन जैसी अनेक निस्सहाय औरतों की चरित्र-गाथाएँ 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में अंकित हैं। इन चरित्रों के माध्यम से महादेवी मुख्यतः सामंती समाज के अंदर घुट रही, छटपटा रही स्त्रियों की दारुण अवस्था के चित्र खींचकर आज के नारीवादी आंदोलन की पूर्वपीठिका प्रस्तुत कर देती हैं। इस दृष्टि से लछमा, भाभी, बिबिया, गुंगिया और भक्तिन उल्लेखनीय हैं।

खेत मज़दूरों, निर्धन किसानों, उत्पीड़ित स्त्रियों और उपेक्षित बच्चों पर केंद्रित रेखाचित्रों के माध्यम से महादेवी की तीव्र सामाजिक चेतना से आपका साक्षात्कार होता है। पर कल्पवास जैसे धार्मिक-सांस्कृतिक रिवाज के बारे में अपनी व्याख्या प्रस्तुत करके लेखिका लोक-विश्वासों और लोक-रीतियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और मूल प्रेरणा का भी खुलासा करती हैं :

'किसी समय कल्पवास का कितना महत्व रहा होगा, इसका अनुमान लगाने के लिए इसका आज का समारोह भी पर्याप्त है। संभवतः उस समय देश के विभिन्न खण्डों में रहने वाले व्यक्तियों को मिलन, उनके पारस्परिक परिचय, विचारों के आदान-प्रदान तथा सांस्कृतिक

समन्वय का यह महत्वपूर्ण साधन रहा होगा। ये नदियाँ इस देश की रक्तवाहिनी शिराओं के समान जीवन-दायक रही हैं, इसी से इनके तट पर इस प्रकार के सम्मेलनों की स्थिति स्वाभाविक और अनिवार्य हो गई हो, तो आश्चर्य नहीं। आज इस संबंध में क्या और क्यों तो हम भूल चुके हैं पर बिना जाने लीक पीटना धर्म बन गया है।'

'मुझे इस कल्पवास का मोह है क्योंकि इस थोड़े समय में जीवन का जितना विस्तृत ज्ञान मुझे प्राप्त हो जाता है उतना किसी अन्य उपाय से संभव नहीं। और जीवन के संबंध में निरंतर जिज्ञासा मेरे स्वभाव का अंग बन गई है।'

अपने धार्मिक-सांस्कृतिक इतिहास को देखने की इस वैज्ञानिक दृष्टि के मूल में महादेवी की प्रखर सामाजिक चेतना को रेखांकित किया जाना चाहिए। अपनी इस दृष्टि से वे केवल अतीत पर ही दृष्टिपात नहीं करती बल्कि वर्तमान को भी व्याख्यायित करती हैं। उन्होंने भाभी, लछमा बिबिया, बालिका माँ, मुन्नु की भाई, और घीसा जैसे रेखाचित्रों में और अधिक विस्तार से धर्म के संकीर्ण, स्वार्थी और जड़ चरित्र का बेबाक चित्रण किया है।

महादेवी का तीव्र सामाजिक बोध केवल चेतना और भावना के स्तर तक ही सीमित नहीं है। यद्यपि यह प्रसंग यहाँ बहुत अधिक चर्चा का विषय नहीं हो सकता, पर यह उल्लेखनीय अवश्य है कि अपने लौकिक कर्म और जीवन के स्तर पर भी महादेवी समाज-सेवा और परोपकार के निजी उदाहरणों से लोगों को प्रेरित करती रहीं।

20.4 'ठकुरी बाबा' की भाषा और शिल्प

संस्मरणात्मक रेखाचित्र की कला और भाषा शैली पर विचार करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि इनमें 'अतीत समय का अंधकार पार कर वर्तमान में लौटता है।' महादेवी ने स्वयं ही रेखाचित्र की साहित्यिक विधा के संदर्भ में 'स्मृति चित्र' नामक अपनी पुस्तक की भूमिका में इस निर्णायक पहलू पर ज़ोर दिया है। जिनके अभाव की उन्हें तीव्र अनुभूति है, उन समय की धूल पोंछ-पोंछ कर पहले वह वह अपने मनोजगत के सूने कमरे में ले आती हैं और उनके साथ अपने आत्मीय संबंध को पुनः जीवित करती हैं। स्मृति कुंज में आत्मीय संबंध वाले व्यक्तियों और पात्रों को पुनर्जीवित कर सशरीर मूर्त करने के क्रम में महादेवी ऐसी गद्य-भाषा का अन्वेषण करती हैं जिसमें वर्ण्य चरित्र और रेखाचित्रकार - दोनों का योगदान हो, जिसमें व्यक्ति और घटना प्रसंग की चित्रमयता की क्षमता हो, जिसमें ऐंद्रिकता, भावना और विचार-दृष्टि तीनों का समावेश हो और जिसमें नाटकीय संवादशीलता चरित्रों की आंचलिकता को मुखर कर सके।

ठकुरी बाबा नामक संस्मरणात्मक रेखाचित्र में उल्लिखित ये सारी विशेषताएँ साफ-साफ झलकती हैं। कटा छंटा हुआ, परिष्कृत संशोधित और चुस्त गद्य-लेखन का जो स्वरूप छायावादी कवियों ने विकसित किया, **ठकुरी बाबा** नामक रेखाचित्र की गद्य-भाषा उसी प्रक्रिया की परिणति है। द्विवेदीयुगीन गद्यकारों की भाषा से यह भिन्न भाषा थी। इस गद्य लेखन में हिंदी को परिनिष्ठित स्वरूप प्रदान करने की ही चिंता नहीं है बल्कि हिंदी भाषी क्षेत्र के जन-समुदायों की विभिन्न बोलियों के शब्द-भंडार, क्रिया-रूपों और मुहावरों से समृद्ध करने की चिंता भी है। इतना ही नहीं, वर्ण्य चरित्र अपनी विशिष्टता बनाए रखते हैं और अपनी ही जन-बोली मे बोलते हैं। महादेवी खड़ी बोली के शिष्ट गद्य में उनकी गंवई भाषा अथवा उक्तियों का रूपांतर न प्रस्तुत करके उस प्रसंग की सजीवता और चरित्र की आंचलिकता (जनपदीयता) को सुरक्षित कर देती है। जैसे **ठकुरी बाबा** में ही, भक्तिन अपनी बोली में बोलती है, **ठकुरी बाबा** भी अपनी देहाती बोली बानी का दामन पकड़े रहते हैं, और कल्पवास में आया उनका पूरा कुटुम्ब भी महादेवी से ग्रामीण भाषा में ही बात करता है। उदाहरण के लिए, प्रारंभ में ही भक्तिन

कहती है : 'कल्पवास की उमिर आई तब उहौ हुई जाई। का एकै दिन सब नेम-धरम समापत करै की परतिग्या है।'

कल्पवास की कुटी में संध्या समय जब ठकुरी अपने कुटुम्ब के साथ आ धमकते हैं और बसेरा की प्रार्थना करते हैं तो अपनी बोली में कहते हैं - 'बिटिया रानी का हम परदेसिन का ठहरै न देहो? बड़ी दूर से पाँच पियादे चले आइत है। ई तो रैन बसेरा है - भोर भयो उठि जाना रे का झूठ कहित है? हम तो बूढ़-बाढ़ मनई हैं।' अंत में जब महादेवी पूछती हैं कि ठकुरी स्वर्ग में कैसे रह पाएंगे? वहाँ न तो कोई उनके कूट पद और न उनकी उलटबासियाँ समझ पाएगा और न आल्हा-ऊदल की कथा ही कोई सुनेगा। स्वर्ग के गंधर्व और अप्सराओं में वे कुछ जँच नहीं पाएंगे। अपनी सहज बुद्धि से नाटकीय अंदाज़ में ठकुरी कहते हैं :

'सो तो हम जानित हैं बिटिया! हम उहाँ अस सोर मचाउब कि भगवान्‌जी पुन धरती पै ढनकाय देहैं। हम फिर धान रोपब, कियारी बनाउब, चिकारा बजाउब और तुम पचै का आल्हा ऊदल की कथा सुनाउब। सरग हमका न चही, मुदा हम दूसर नवा शरीर मांगै बरे जाब जरूर। ई ससुर तो बनाय कै जरजर हुइगा।'

महोदवी के स्मृति-लोक में चरित्र या वर्ण्य पात्र हू-ब-हू साकार हो जाता है अपनी ही बोली बानी और विशिष्ट प्रकार के नाटकीय तेवर के साथ। इसे गद्य के साँचे में ढालने के लिए महादेवी अपने गद्य की चुस्ती और ठोंक-पीटकर रची गई शालीनता को समानांतर प्रस्तुत कर दो अलग-अलग वर्गों के बीच अंतःक्रिया का स्वरूप भी स्पष्ट कर देती हैं। इससे चरित्रों में ग्रामीण संस्पर्श की जीवंतता बनी रहती है और उनके जीवन का यथार्थ भी मुखर रूप में प्रकट हो जाता है।

दरअसल रेखाचित्रकार के नाते महादेवी की कला मूलतः वर्ण्य पात्रों को एक ओर जहाँ टाइप चरित्र के रूप में चित्रित करने में सफल हुई हैं, वहीं उन पात्रों की अजीबोगरीब निजी विशिष्टता को भी अंकित करने की प्रतिज्ञा पूरी करती हैं। इसलिए ठकुरी देहाती अंचलों के आशु जन-कवि के रूप में अपनी विशिष्टता भी दर्शाता है। इसके साथ गाँव के लोगों की परोपकार भावना, सहजता, सरलता, सहृदयता, घर फूँक मस्ती और भीषण परिस्थितियों में जूझने वाला जीवट भी उसके सामूहिक जीवन के अंतर्भूत गुण के रूप में उभरते हैं।

रेखाचित्र में लिए गए पात्र का अंतर्बाह्य जीवन तभी पूरी तरह उभर पाता है जब उसका हुलिया नख-शिख, नाक-नक्श, व्यक्तित्व इस तरह वर्णित हो कि पात्र का स्वरूप पूरी तरह उभर आए। इसके साथ, उस पात्र के जीवन की झाँकी देने के लिए, उसके भाव, विचार, संस्कार दर्शाने के लिए उसके जीवन के अंतर्विरोधों और परिवेशों की भी झांकी प्रस्तुत करनी होती है। अगर इस दृष्टि से देखें तो आपको पता चलेगा कि जिस क्षण ठकुरी का मंच पर अवतरण होता है उसी क्षण महादेवी वर्मा एक सामान्य-सा हुलिया पेश करती हैं :

'एक वृद्ध के नेतृत्व में बालक, प्रौढ़, स्त्री, पुरुष आदि की सम्मिश्रित भीड़ थी। गठरी-मोटरी, बरतन, हुक्का-चिलम, चटाई, पिटारा, लोटा-डोर सब गृहस्थी लादे फांदे यह अनियंत्रित अभ्यागत मेरे बरामदे में कैसे आ घुसे, यह समझना कठिन था।' देहाती **ठकुरी बाबा** के संपूर्ण कुटुम्ब के प्रवेश के लिए जिन चीज़ों - गठरी, मोटरी आदि का उल्लेख किया गया है, उनके लिए जन-भाषा से ही सारी संज्ञाएँ ली गई हैं ताकि कुलीन लोगों से भिन्न इस देहाती समुदाय का चित्र आँखों के सामने सजीव हो सके। यह बात निर्विवाद है कि अपने रेखाचित्रों में महादेवी पात्रों के जीवन प्रसंगों और उनके सहचर्यों को अंकित करने के लिए उन पात्रों द्वारा उपयोग में लाई जा रही संज्ञाओं, क्रियाओं, लोकोक्तियों आदि का बड़ा सटीक इस्तेमाल करती हैं। इससे चित्र और वर्णन में यथार्थता आती है, और वायवी काल्पनिकता का कोहरा रचना को आच्छन्न नहीं कर पाता। 'अतीत के चलचित्र' में पहाड़ी युवती लछमा के चेहरे को अंकित करते हुए महादेवी ने बताया कि धूप से झुलसा हुआ उसका मुख ऐसा जान पड़ता है कि जैसे किसी ने कच्चे सेब को आग की आँच पर पका लिया हो। आलंकारिक भाषा में इसे उत्प्रेक्षा

कहते हैं। समाज और व्यवस्था ने लछमा के साथ जो सलूक किया है उसे दर्शाने के लिए और पाठकों के हृदय में करुणा उत्पन्न करने के लिए वर्णन की इस कला का महादेवी पूरा उपयोग करती हैं। 'अतीत के चलचित्र' में ही रामा के काले कलूटे शरीर के वर्णन के साथ उसकी सफेद चमकती हुई दंत-पंक्तियों का वर्णन आता है :

'किसी थके झुंझलाए शिल्पी की अंतिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, साँस के प्रवाह से फैले हुए से नथने, मुक्त हँसी से भरपूर फूले हुए से ओंठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दंतपंक्ति।'

सादृश्य झलकाने के लिए लाए गए उपमान रेखांकन और चित्रांकन के अनूठे औज़ार हैं। चित्रकला के अंतर्गत पोर्टेट में जो काम रंगों और रेखाओं से लिया जाता है, रेखाचित्र की कला में वर्णन, इतिवृत्त अंकन आदि की सहायता के लिए सादृश्य विधान और रूपांकन होते हैं। ठकुरी का चित्र अगर आप ध्यान से देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि यह किस प्रकार का पोर्टेट है।

'सिर का अग्रभाग खल्वाट होने के कारण चिकना चमकीला था, पर पीछे की ओर कुछ सफेद केशों को देखकर जान पड़ता था कि भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं। छोटी आँखों में विषाद, चिंतन और ममता का ऐसा सम्मिश्रित भाव था जिसे एक नाम देना संभव नहीं। लम्बी नाक के दोनों ओर खिंची हुई गहरी रेखाएँ दाढ़ी में विलीन हो जाती थीं। ओठों में व्यक्त भावुकता को विरल मूंछें छिपा लेती थीं और मुख की असाधारण चौड़ाई को दाढ़ी ने साधारणता दे डाली थी। सघन दाढ़ी में कुछ लम्बे सफेद बालों के बीच में छोटे काले बाल ऐसे लगते थे, जैसे चाँदी के तारों में जहाँ-तहाँ काले डोरे उलझकर टूट गए हों।'
ठकुरी का ही दूसरा चित्र जिसमें क्रमशः उनकी शारीरिक जर्जरता का रेखांकन महादेवी ने इस प्रकार किया है :

'मुख पर वैसी ही उन्मुक्त हँसी का भाव था, पर मानो धीरे-धीरे साथ छोड़ने वाले दाँतों को याद रखने के लिए ओठों ने अपने ऊपर स्मृति की रेखाएँ खींच ली थीं।'

विशेषण, भाववाचक संज्ञाएँ, उपमान योजना और चेहरे के वर्णन में क्रमिकता रेखाचित्रकार की वर्णनात्मक भाषा शैली के मुख्य पहलू हैं। ऐसे वर्णनों के वक्त प्रायः ही लम्बे जटिल वाक्य रूपांकन के स्वतंत्र अनुच्छेद के रूप में ढलकर सामने आते हैं। लेखिका का उद्देश्य है - पात्र के शारीरिक व्यक्तित्व, उसके अंतरंग जीवन की भावात्मकता आदि से आपका परिचय कराना ताकि उसे आप जीते-जागते प्राणी के रूप में देख सकें। रूप वर्णन के इन अनुच्छेदों के वाक्य भी इस तरह गढ़े गए हैं कि लेखिका अपनी टिप्पणी भी उसके अंदर डाल दे। उपर्युक्त उद्धरण में ही खल्वाट सिर के पिछले हिस्से के बालों के संबंध में महादेवी का वर्णन है - 'भाग्य की कठोर रेखाओं से सभीत होकर वे दूर जा छिपे हैं।' वृद्ध **ठकुरी बाबा** के दुर्भाग्य पर लेखिका की टिप्पणी इससे स्पष्ट हो जाती है।

कर्म के मैदान में और समाज के अन्य लोगों से आदान-प्रदान के क्रम में ठकुरी का गतिशील चित्र खींचने में महादेवी की भाषा की त्वरा और लोच, वाक्य-विधान के अंतर्गत संघात निम्नलिखित प्रसंग में द्रष्टव्य है - 'कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता, तो किसी के मचान पर बैठकर रात-रात भर खेत की रखवली करते रहते। कोई बारहमासा वाला रसिक श्रोता मिल जाता, तो उसके बैलों का सानी-पानी करने में भी हेठी न समझते। कोई आल्हा ऊदल की कथा सुनना चाहता तो मीलों पैदल दौड़े जाते। कहीं होली का उत्सव होता, तो अपने कबीर सुनाने में भूख-प्यास भूल जाते।'

इसी रेखाचित्र में ठकुरी के आतिथ्य प्रेम, परोपकारी और सहज दानशील स्वभाव के प्रसंग में भी ऐसी ही वाग्धारा की आवृत्ति देखी जा सकती है :

'कोई गुड़ की डली रखकर **ठकुरी बाबा** से आध सेर आटा ले जाता है, कोई चार मिर्च देकर आलू-शकरकंद का फलाहार प्राप्त कर लेता है। कोई पत्ते पर तोला भर दही रखकर कटोरा भर चावल नापता है। कोई धूप के लिए रत्ती भर घी देकर लुटिया भर दूध चाहता है।'

महादेवी की गद्य कृतियों की भाषा हमेशा वर्ण्य पात्र के जीवन आख्यान की आवश्यकता के अनुसार दो स्तरों पर शब्द चयन करती है। पहला स्तर तो तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का है जिसमें बछड़ा के स्थान पर वत्स, चंवर की जगह चामर, रोयाँ के बजाय रोम, गर्मी की छुट्टी की जगह ग्रीष्मावकाश जैसे प्रयोग उन्हें प्रिय हैं। दूसरा स्तर उपेक्षित, दलित और गाँव-गंवई के ग्रामीण पात्रों की तद्भव और देशज शब्दावली का है। इन दो स्तरों पर समानांतर रूप में चलने वाली गद्य-भाषा गंभीरता और सहजता, परंपरागत सांस्कृतिक जीवन के शिष्ट स्वरूप और समकालीन अनपढ़ आबादी की जन-संस्कृति के बनते-बिगड़ते स्वरूप के बीच के गहरे रिश्ते को उद्घाटित करती है। इनके बीच कहीं-कहीं अंग्रेज़ी के आवश्यक उपयोगी शब्द भी ज्यों के त्यों आ गए हैं। मसलन, स्प्रिंगदार, जू, स्टूल, ड्रामा, ऑपरेशन, फोटो इन्लार्जमेंट, सप्लाई, डेड लेटर, ऑफिसर, क्ले मॉडल आदि। अनेक स्थलों पर शुक्राचार्य, विश्वकर्मा मयदानव, मनु, संजय, धृतराष्ट्र, भीष्म, कृष्ण, द्रोणाचार्य, दुर्मुख, दुर्वासा, कण्व, शकुंतला, तपस्यारत शूद्र, एकलव्य आदि के पौराणिक प्रसंग स्मित हास्य, व्यंग्य और सादृश्य वर्णन में सहायक हो गए हैं। आलंकारिकता की दृष्टि से प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, निदर्शना और उदाहरण का उपयोग किया गया है।

महादेवी के रेखाचित्रों की गद्य-भाषा की उपर्युक्त उल्लिखित विविध विशेषताएँ उनके गद्य-शिल्प को आकार देने में, एक स्वरूप प्रदान करने में कहना चाहिए नई उद्भावना और तकनीक में मददगार रही हैं। इन संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की विधा को लेकर हिंदी के प्रौढ़-परिपक्व पाठकों और सुधी आलोचकों के बीच भी मतभेद रहा है। कुछ लोग इन रचनाओं को संस्मरण की संज्ञा देते हैं, कुछ कहानी की और कुछ लोग स्केच, रेखाचित्र या पोर्टेट कहते हैं। दरअसल इन रेखाचित्रों में आख्यान अथवा कथा का तत्व प्रमुखता से उजागर होता है। अपने स्मृति-लोक में बसे पात्रों की आशा-निराशा, जय-पराजय और दुःख-सुख को समाज और दुनिया के बहु-स्तरीय परिवेश में महादेवी अंकित करती हैं। इसलिए उनकी एक कहानी भी होती है, उसमें घटनाओं के मोड़ और उतार-चढ़ाव भी होते हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये रेखाचित्र कुतूहल से रहित और घटना-शून्य पात्रों की जीवन-कथा हैं। कहना चाहिए कि ये वृत्तमूलक व्यक्ति चित्र तो हैं ही, पर इन पात्रों के व्यक्तित्व पर लेखिका से उनके संबंधों का रंग भी प्रगाढ़ रूप में चढ़ गया है। महादेवी अपनी स्मृति के सूने कक्ष में अपने संसर्गों के परिणामस्वरूप इन पात्रों को जिस रूप में पुनर्जीवित करती हैं, उसी रूप में पाठकों के आगे मूर्तिमान भी करती हैं और चाहती हैं कि पाठक उनकी ही करुणा या अनुकम्पा, उनकी ही ममता या प्यार भरी झिड़क, उनके ही संस्कार या दृष्टिकोण से उन पात्रों को अपनाएँ - 'इनके प्रकाशन के संबंध में मैंने कुछ सोचा ही नहीं। चिंतन की प्रत्येक उलझन के हर एक स्पन्दन के साथ छापेखाने का सुरम्य चित्र मेरे सामने नहीं आता। इसके अतिरिक्त, इन संस्मरणों के आधार, प्रदर्शनी की वस्तु न होकर मेरी अक्षय ममता के पात्र रहे हैं। उन्हें दूसरों से आदर मिल सकेगा, इसकी परीक्षा से प्रतीक्षा रुचिकर जान पड़ी।' (अतीत के चलचित्र - अपनी बात) महादेवी के रेखाचित्र के शिल्प की यही शक्ति और यही सीमा भी है। वर्णनशीलता का ऐसा गद्य-शिल्प आपको महादेवी के यहाँ ही मिलेगा जिसमें यत्र-तत्र उनकी अपनी दृष्टि से अंतर्भूत टिप्पणी वाक्यांशों में बद्धमूल दिखाई दे। यानी उन पात्रों को महादेवी की ही भाव-दृष्टि से आप देखें - 'उन मानव-हृदयों में उमड़ते हुए भाव समुद्र की जो स्पर्श मधुर तरंग मुझे छू भर गई थी, उसी की स्मृति मेरे मानस तट पर न जाने कितने विरोधी चित्र आँकने लगी। कितने ही विराट कवि सम्मेलन, कितनी ही अखिल भारतीय कवि गोष्ठियाँ मेरे स्मृति की धरोहर हैं। मन ने कहा खोजो तो उनमें कोई इससे मिलता हुआ चित्र - और बुद्धि प्रयास में थकने लगी।'

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने महादेवी के रेखाचित्रों की भाषा को 'सर्जनात्मक भाषा' कहते हुए लिखा है कि 'महादेवी वर्मा का गद्य पहली बार लगता है कि काव्य-रूपों से ऊपर उठकर अपने में सर्जनात्मक लेखन है, जो आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहे जाने का महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ.195)

20.5 'ठकुरी बाबा' का मूल्यांकन

हिंदी में रेखाचित्र नामक जिस साहित्यिक विधा का उद्भव और विकास हुआ, उसके उदाहरण अंग्रेज़ी या अन्य यूरोपीय साहित्य में उपलब्ध नहीं है। कुछ व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनेताओं, वैज्ञानिकों आदि के बारे में संस्मरणात्मक कृतियाँ अंग्रेज़ी या यूरोपीय साहित्य में मिल जाती हैं, पर रेखाचित्र या स्केच नहीं मिलते। दरअसल हिंदी में इस साहित्यिक कला का आविर्भाव चित्रकला में प्रचलित रेखांकन और पोर्टेट के आधार पर हुआ है।'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में भी अंग्रेज़ी साहित्य की एक साहित्यिक विधा के रूप में स्केच का कोई ज़िक्र नहीं है, पर चित्रकला के इतिहास के अंतर्गत पोर्टेट का ज़िक्र अवश्य ही है। रेनेसां के बाद जब चित्रकला के क्षेत्र में लौकिक पात्रों (गैर-ईश्वरीय) को विषय बनाया गया तभी पोर्टेट की कला एक विशिष्ट शाखा के रूप में अवतरित हुई।

हिंदी में रेखाचित्रकार के रूप में महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि का अभ्युदय सन् 30 के बाद होता है। यह वह समय है जब साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का विकास निरंतर नए-नए रूपों में दृष्टिगत होता है और गद्य के क्षेत्र में नए-नए रूपगत प्रयोग हो रहे हैं। समाज और देश की वास्तविकताओं के बहुरूपी आयामों को लेखन का विषय बनाने की सांस्कृतिक आवश्यकताओं के तहत गद्य में भी नई उद्भावना और प्रयोगशीलता के उदाहरण के रूप में रेखाचित्रों को स्वीकृति मिलने लगी। इनमें अजीब किस्म का आकर्षण और अनूठापन था और वर्ण्य पात्रों का साक्षात्कार कराने की अद्भुत शक्ति भी। ये ऐसे पात्र थे जो सीधे-सीधे जीवन से उठा लिए गए थे और जिनपर धरती की धूल भी चढ़ी हुई थी। दलित और उत्पीड़ित आम जनता के बीच के ये जाने-पहचाने चेहरे थे जो गद्य की नई कला के फ्रेम में कांट-छांट कर पेश किए गए थे। इन रेखाचित्रों को अविलम्ब लोकप्रियता मिलने लगी। महादेवी द्वारा लिखित 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' आदि तथा रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित 'माटी की मूरतें', 'गेहूं और गुलाब' अविस्मरणीय क्लासिक कृतियों के रूप में आज भी याद की जाती हैं। अन्य रेखाचित्रकारों में बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री राम शर्मा, देवेन्द्र सत्यार्थी, कन्हैया मिश्र 'प्रभाकर', सत्यवती मलिक और ओंकार शरद के नाम उल्लेखनीय हैं।'हंस', 'रूपाभ', 'विशाल भारत', 'कल्पना', 'अजंता' और 'नई धारा' पत्रिकाओं का रेखाचित्र के विकास में सराहनीय योगदान रहा है।

रेखाचित्र न तो संपूर्ण कथा होती है और न किसी पात्र का संपूर्ण जीवनवृत्त। वस्तुतः एक निश्चित दृष्टिकोण से किसी व्यक्ति, पात्र अथवा चरित्र के कुछेक पहलुओं का गतिशील प्रतिबिंब ही शब्द चित्र, रेखाचित्र या स्केच का साहित्यिक आकार ग्रहण कर लेता है। डॉ.नगेन्द्र ने विचार और विश्लेषण नामक अपनी पुस्तक में 'ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' में स्केच के संबंध में दी गई परिभाषा को आधार बनाते हुए यह कहा है कि जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई अर्थात् रेखाचित्र ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ तो हों पर उनमें रंग न हो। दूसरे शब्दों में कथानक का विस्तार न हो, तथ्यों का विश्लेषण न हो सिर्फ उनका उद्घाटन मात्र हो।' ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में स्केच की परिभाषा दी गई है - 'ऐसा संक्षिप्त वर्णन जो प्रमुख या मुख्य तथ्यों का आख्यान करता हो, न कि पूरा ब्यौरा देता हो।' कहना न होगा कि इस प्रकार की परिभाषाओं में बताई गई सीमा का अतिक्रमण करते हुए हिंदी में लिखे गए रेखाचित्रों ने सर्वथा नए रूप में अपना विकास किया।

कभी-कभी रेखाचित्र और व्यक्ति-केंद्रित संस्मरण के बीच फर्क करना बड़ा मुश्किल होता है। परिभाषा की दृष्टि से तो यह मान लिया गया था कि रेखाचित्र विषय-प्रधान होता है और संस्मरण विषयी-प्रधान। पर महादेवी के संस्मरण भी विषय-प्रधान बन गए हैं, महादेवी ही नहीं, अनेक लेखकों की ऐसी कृतियाँ हैं।

'अतीत के चलचित्र' नामक रेखाचित्र संकलन की भूमिका में महादेवी ने स्वीकार किया है कि इन स्मृति-चित्रों में उनका जीवन भी आ गया है पर उनका जीवन वर्ण्य पात्र को एक संदर्भ प्रदान करते हुए हाशिए के तौर पर ही आता है, अतः इन रेखाचित्रों में लेखिका की आत्मीयता प्रकट होती है, आत्मपरकता या आत्मग्रस्तता नहीं। अपनी भावना की तूलिका से इन चित्रों को बेशक उन्होंने ही अंकित किया है।

महादेवी के रेखाचित्रों में **ठकुरी बाबा** की चर्चा कम ही हुई है। रामा, घीसा अलोपी बदलू, लछमा, भक्तिन, चीनी फेरी वाला आदि की चर्चा खूब की जाती रही है। इसका मतलब यह नहीं कि रेखाचित्र की कसौटी पर यह कोई नगण्य रचना है। सच्चाई तो यह है कि महादेवी के प्रारंभिक रेखाचित्रों की लोकप्रियता के बवंडर में बाद वाले काल की यह रचना चर्चा के केंद्र में आई ही नहीं। चर्चा से बाहर होने के कारण इस रेखाचित्र में किए गए नए प्रयोगों का उल्लेख तक कहीं नहीं मिलता है।

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित कोई भी रेखाचित्र इतना सुदीर्घ नहीं है। इस रेखाचित्र में**ठकुरी बाबा** का नाटकीय अवतरण काफी बाद में होता है, जबकि प्रारंभ में भक्तिन और कल्पवास का ही विशद वर्णन है। दूसरी बात यह कि ठकुरी के जन्म, उसके परिवार, उसके विवाह, पत्नी की मृत्यु, अंधे दामाद के साथ बेला के विवाह आदि प्रसंगों के साथ ठकुरी के साथ आई हुई पूरी टोली के सभी पात्रों का बारी-बारी से वर्णन होता है। अगर सिर्फ ठकुरी के जीवनवृत्त और व्यक्तित्व से संबंधित प्रसंग को लिया जाए तो इस लंबे रेखाचित्र को मात्र एक तिहाई पृष्ठों में संशोधित संपादित कर उसका नया संस्करण प्रस्तुत किया जा सकता है। संपादन की इस प्रक्रिया में शहरी कवि सम्मेलन के प्रसंग के साथ-साथ जनकवियों से उसकी तुलना के क्रम में आई हुई टिप्पणियाँ भी छाँटकर अलग की जा सकती हैं। पर इस प्रकार की कॉट-छाँट और संपादकीय कैंची से इस रेखाचित्र की कोलाज शैली ही नष्ट हो जाएगी। ग्रामीण जीवन के सामूहिक स्वरूप की साहचर्यगत सरलता और परोपकार भावना को उभारने के लिए ही महादेवी ने सहुआइन, काछी, बूढ़ी मौसी, ब्राह्मण दम्पत्ति आदि के शब्द चित्र अंकित किए हैं। इनके बीच ठकुरी नामक जनकवि की फक्कड़ विशिष्टता तथा अजीबो-गरीब ढंग से अचंभे में डालने वाली उसकी सहृदयता का जीवंत रेखांकन होता है। कुलीन संस्कृति के बरक्स जन संस्कृति की तुलनीय स्थिति का वर्णन इस रेखाचित्र को एक विराट सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है। नष्टप्रायः और मरणोन्मुख जनसंस्कृति के प्रति हमदर्दी और अपनी विरासत के रूप में उसे बचाए रखने की चिंता के प्रतीक पुरुष के रूप में ठकुरी हैं, जिनके साथ महादेवी की साझेदारी तो है ही, अन्यों को भी इस स्थिति पर विचार करने के लिए एक आमंत्रण यहाँ मिलता है। समकालीन समाज में स्वार्थपरता और लोभवृत्ति के बढ़ते दबाव के बीच **ठकुरी बाबा** और उनके संगी-साथी मानव धर्म की खोती जा रही विरासत के अवशेष प्रतीत होते हैं। एक संस्कृति-कर्मी के नाते महादेवी की टिप्पणी सार्थक नहीं होती, अगर **ठकुरी बाबा** में वे गहरी संवेदनशीलता के साथ इस विरासत की रक्षा का एहसास न कराती। अतः यह रेखाचित्र किसी दलित उपेक्षित पात्र के सीमित जीवन-खंड का स्केच न होकर **ठकुरी** के व्यक्तित्व के अंकन के बहाने ठेठ देहाती आबादी के पिछड़ेपन के बावजूद उसकी स्वस्थ सकारात्मक जनसंस्कृति को बचाने का खुला आह्वान बन गया है। इस रेखाचित्र की विराट संदर्भशीलता उसे अन्य रेखाचित्रों से विशिष्ट और भिन्न बना देती है।

रेखाचित्र विधा के कलात्मक मानदंडों पर यदि आप **ठकुरी बाबा** को कसें तो पता चलेगा कि पात्रों के चेहरे, व्यक्तित्व, रूप-रंग, पहनावे, रहन-सहन, अंतरंग व्यक्तित्व आदि की झलकियाँ

ठोस रूप में अंकित करने में महादेवी को पूरी सफलता मिली है। ठकुरी **बाबा** में यद्यपि केंद्रीय पात्र तो एक ही है, पर उसके व्यक्तित्व के बहु-आयामी पहलू को दर्शाने के लिए कल्पवास में उसके साथ आई हुई पूरी टोली के सामूहिक परिवेश का सटीक रेखांकन आवश्यक था। इसीलिए महादेवी ने आगंतुकों की टोली द्वारा बसेरा ग्रहण करने के बाद पर्णकुटी के अंदर और बाहर का नए सिरे से दृश्यांकन प्रस्तुत किया है - 'बरामदे की दूसरी ओर का जमघट कुछ विचित्र सा था। एक सूरदास समाधिस्थ जैसे बैठे थे। उनके मुख के चेचक के दाग, दृष्टि के जाने के मार्ग की ओर संकेत करते जान पड़ते थे। श्याम और दुर्बल शरीर में कंठ की उभरी नसों का तनाव बताता था कि वे अपनी विकलांगता का बदला कंठ से चुका लेना चाहते हैं। सिरकी की टट्टी बाँधते समय बाँस का एक कोना कुछ बढ़कर खूँटी जैसा बन गया था, इसी से एक चिकारा और एक जोड़ा मंजीरा लटक रहा था। सामान में एक चादर, टाट और एक लुटिया भर थी, जिसके किनारे घिसते-घिसते टेढ़े-मेढ़े और पैने हो गए थे।'

ठकुरी बाबा के अंधे दामाद का यह उपर्युक्त चित्र प्रस्थान बिंदु है अर्थात् कलाकार के ब्रश का पहला स्पर्श मात्र है। इसके बाद टाट की सीमा से बाहर 'वीरासन से विराजमान और तिलकछाप से अपने पांडित्य की घोषणा करने वाले एक प्रौढ़' ब्राह्मण पंडित का चित्र है। फिर स्त्रियों की मंडली का रेखांकन है - बड़ी सी गठरी के सहारे दो वृद्धाएँ सुमिरनी लिए ठंडी ज़मीन पर बैठी थीं जिनमें एक ऊँघ रही थी और दूसरी अपने आसपास बसी सृष्टि के प्रति आवश्यक चौकन्नी लगती थी। दो साँवली किशोरियाँ फटी दरी के टुकड़े पर सो रही काली कलूटी बालिका, चूल्हा खोदने में व्यस्त श्यामांगिनी युवती, अनेक छिद्रों वाली एक काली कंबली में सिकुड़े दो किशोर बालक आदि के सिलसिलेवार चित्र कल्पवास की पर्णकुटी के बदले हुए परिवेश का सजीव स्वरूप आपके सामने ले आते हैं। स्थान, काल, परिवेश, पात्र सबसे अच्छी तरह परिचित होने के बाद ही ठकुरी का व्यक्तित्व सामने आता है जो व्यक्तिपरक आख्यान जैसा आनंद देता है।

वस्तुतः यह घटना-बहुल, चरित्र-बहुल और समस्यामूलक रेखाचित्र है। व्यक्ति और परिवेश, दोनों के रेखांकन की कलात्मक विशेषता महादेवी के रेखाचित्रों को सजीवता प्रदान करती है। यह विशेषता **ठकुरी बाबा** में और भी गहरी हो गई है।

20.6 सारांश

रेखाचित्र : **ठकुरी बाबा** नामक इस इकाई में आपने महादेवी वर्मा द्वारा लिखित रेखाचित्र '**ठकुरी बाबा**' का विश्लेषण और मूल्यांकन का अध्ययन किया है। **ठकुरी बाबा** एक रेखाचित्र है इसलिए यह बहुत ही जरूरी है कि आप यह जानें कि रेखाचित्र के रूप में **ठकुरी बाबा** की विशेषताएँ क्या हैं। उम्मीद है आपने इस दृष्टि से इकाई को समझ लिया होगा है।

ठकुरी बाबा महादेवी वर्मा के अन्य रेखाचित्रों से कई अर्थों में भिन्न है। इसमें **ठकुरी बाबा** और उनके संगी-साथियों का जो जीवन-चित्र प्रस्तुत किया है, उससे भारतीय ग्राम्य समाज के सबसे दरिद्र और उत्पीड़ित लोगों के जीवन की करुणा गाथा हमारे सामने उभर आई है। लेकिन लेखिका ने इसके माध्यम से उन सवालों को भी गहरी पीड़ा के साथ प्रस्तुत किया है जिसने उनके जीवन को कष्टमय बना रखा है। **ठकुरी बाबा** में महादेवी वर्मा ने रेखाचित्र के परंपरागत ढाँचे को तोड़ा है। भाषा की जो रचनात्मक शक्ति दिखाई देती है, वह इस बात का प्रमाण है कि महादेवी का गद्य कितना उत्कृष्ट है। एक ओर, संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दावली और दूसरी ओर देशज तथा जनपदीय भाषा का प्रयोग ऐसे गद्य की सृष्टि करता है, जिसकी तुलना किसी अन्य लेखक की भाषा से नहीं की जा सकती।

ठकुरी बाबा का मूल्यांकन सिर्फ रेखाचित्र और उसकी कलात्मक उत्कर्षता के आधार पर करना पर्याप्त नहीं है। **ठकुरी बाबा** के माध्यम से उन्होंने अपने समय और समाज, दोनों के गहरे अंतर्विरोधों को भी उजागर किया है। महादेवी की सहानुभूति समाज के पद-दलित और उत्पीड़ित लोगों के प्रति है। विशेषतः नारी समाज को जिस तरह की सामाजिक और मानसिक यातनाओं से गुज़रना पड़ता है, उसका जैसा चित्र महादेवी प्रस्तुत करती है, वह अतुलनीय है। यह इकाई आपको **ठकुरी बाबा** की ऐसी सभी विशेषताओं को समझने का आधार प्रदान करती है।

अभ्यास

1. रेखाचित्र की विशेषताओं के संदर्भ में **ठकुरी बाबा** का विश्लेषण और मूल्यांकन कीजिए।
2. **ठकुरी बाबा** की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. **ठकुरी बाबा** के माध्यम से महादेवी वर्मा ने किन-किन सामाजिक प्रश्नों को उठाया है? लेखिका के सामाजिक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट कीजिए।

इकाई 21 संस्मरण : वसंत का अग्रदूत

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 संस्मरण की अवधारणा
21.3 संस्मरण का अन्य साहित्यिक विधाओं से संबंध
21.4 हिंदी में संस्मरण-लेखन की परंपरा
21.5 **वसंत का अग्रदूत** की विशिष्टता
21.6 **वसंत का अग्रदूत** की अंतर्वस्तु
21.7 **वसंत का अग्रदूत** का संरचनात्मक वैशिष्ट्य
21.8 सारांश

21.0 उद्देश्य

एम.ए. हिंदी के बीज पाठ्यक्रम 'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' के पाँचवें खंड की दूसरी और पाठ्यक्रम की इक्कीसवीं इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप संस्मरण की अवधारणा और उसके मूलभूत आधार को समझ सकेंगे। संस्मरण और अन्य साहित्यिक विधाओ। के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे। हिंदी में संस्मरण लेखन की परंपरा और प्रमुख संस्मरण लेखकों के बारे में बता सकेंगे।

संस्मरण के रूप में अज्ञेय द्वारा लिखित वसंत का अग्रदूत की विशिष्टता का उल्लेख कर सकेंगे। साथ ही एक संस्मरण लेखक के तौर पर अज्ञेय के महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।

वसंत का अग्रदूत संस्मरण की अंतर्वस्तु का विवेचन करते हुए आप निराला के व्यक्तित्व और कवि के रूप में निराला के भावबोध के मुख्य आयामों को समझ सकेंगे।

संस्मरण के रूप में **वसंत का अग्रदूत** के संरचनात्मक विशिष्टता को समझने के क्रम में भाषा और शिल्प की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' नामक इस पाठ्यक्रम की इस इकाई में आप अज्ञेय द्वारा रचित संस्मरण **'वसंत का अग्रदूत'** का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह संस्मरण महाकवि निराला के बारे में है।

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में निराला अपने व्यक्तित्व एवं सृजन-दोनों धरातलों पर सर्वाधिक चर्चित एवं विवादास्पद रचनाकार हैं। अंतर्विरोधों से ग्रस्त निराला इकहरे अथवा पूर्वनिर्धारित फ़ैसलों के लिए चुनौती हैं। उनके व्यक्तित्व में विद्रोह एवं संस्कार की समानांतर उपस्थिति है। अपनी रचनाओं में निराला प्रयोग तथा परंपरा - दोनों धाराओं को सृजनात्मक आयाम देते हैं। वेदांत और मार्क्सवाद, श्रृंगार और भक्ति, मिथक और समसामयिकता, औदात्य और विद्रूपता, अवसाद और व्यंग्य - सब कुछ उनकी ऊर्जस्वित रचनाशीलता में अंतर्लयित हो गया है। निराला की महत्वपूर्ण विशेषता स्वीकृत ढाँचे का अतिक्रमण है, यह ढाँचा चाहे सामाजिक मान्यताओं का हो अथवा रचना-प्रतिमानों का। सीमाओं को तोड़कर मनुष्य एवं रचना की मुक्ति निराला का लक्ष्य है। इसलिए निराला आकर्षित करते हैं। वे राह तोड़ते हैं और नयी

राह बनाते हैं। इसलिए यह अकारण नहीं है कि परवर्ती रचना-पीढ़ी में निराला के लिए एक विशिष्ट आकर्षण है। वे छायावादोत्तर रचना-परंपरा के लिए चुनौती भी हैं और प्रेरणा भी। इन सभी स्थितियों ने निराला को एक किंवदंती पुरुष में बदल दिया है।

इस संस्मरण-लेख के रचनाकार नयी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय हैं। यह विचित्र संयोग है कि छायावादोत्तर काव्य में अज्ञेय का व्यक्तित्व, उनका काव्य-चिंतन एवं रचना-कर्म भी अनेक दृष्टियों से विवादास्पद रहा है। अज्ञेय भी 'लीक' तोड़ने वाले कवि हैं और प्रयोगों के माध्यम से नये काव्य-सत्य एवं नयी रचना-प्रणाली के निर्माण का आह्वान करते हैं। विद्रोह एवं प्रयोग - निराला एवं अज्ञेय दोनों रचनाकारों को एक समान धरातल पर ले आता है, हालांकि विद्रोह एवं प्रयोग की प्रकृति - दोनों रचनाकारों के यहां एक-सी नहीं है। इस दृष्टि से यह संस्मरण महत्वपूर्ण भी है और दिलचस्प भी। इस संस्मरण की विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व सस्मरण के स्वरूप, अन्य-विधाओं से उसके संबध एवं हिंदी संस्मरणों एवं संस्मरणकारों की परंपरा पर संक्षिप्त दृष्टिपात उचित होगा।

21.2 संस्मरण की अवधारणा

संस्मरण का मूल अर्थ है - सम्यक् स्मृति, एक ऐसी स्मृति जो वर्तमान को अधिक सार्थक, समृद्ध और संवेदनशील बनाती है। संस्मरण मूलतः अतीत एवं वर्तमान के बीच एक सेतु है। समय-सरिता के दो तटों के बीच संवाद का माध्यम है संस्मरण। यह एक संबंध-चेतना है जो एक तरफ स्मरणीय को आलोकित करती है तो दूसरी तरफ़ संस्मरणकार को भी अपने मूल्यांकन का अवसर देती है। समय की धुंध में ओझल होती ज़िंदगी को पुनर्सृजित करने की आंतरिक आकांक्षा में ही संस्मरण के बीज निहित होते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि संबंधों की आत्मीयता एवं स्मृति की परस्परता ही संस्मरण की रचना-प्रक्रिया का मूल आधार है। संस्मरण में व्यक्ति एक सूचना नहीं होता, बल्कि वह ज़िंदगी के अनेक आवर्तों से लिपटा हुआ एक जीवंत अस्तित्व होता है। संस्मरणकार अपने अनुभवों के प्रकाश में उन आवर्तों की पहचान करता है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि संस्मरण के मूल तत्व हैं - स्मृति, संबंध-भाव, आत्मानुभव और स्वयं को खोजने-पहचानने की ईमानदार कोशिश। स्मृति - यानी अतीतता। स्मृति दरअसल अतीत की वर्तमानता की बोधक है। स्मृति का एक सिरा वर्तमान से बँधा होता है और दूसरा अतीत से। संस्मरण का संबंध उस अतीत से है जो अनुभव के रूप में वर्तमान में जीवित है। इसलिए अतीतता संस्मरण का बुनियादी गुण-धर्म है। संस्मरण सूचना के आधार पर नहीं लिखे जा सकते। साक्षी-भाव भी संस्मरण के लिए पर्याप्त नहीं। एक साथ जीने और बीतने से उपलब्ध भाव ही संस्मरण के आधार होते हैं यद्यपि इस जीने एवं बीतने की अवधि कितनी ही छोटी एवं खंडित क्यों न हो। इसके साथ संस्मरण में रचनाकार अपने को भी प्रकाशित अथवा विज्ञापित करता चलता है। संस्मरण कल्पना के आधार पर नहीं लिखे जा सकते। अतः आत्मीयता, अनुभव की प्रत्यक्षता एवं घटना तथा परिवेश की सत्यता - संस्मरण के मूलभूत आधार कहे जा सकते हैं। सामान्यतः यह माना जाता है कि महान् व्यक्तियों के ही संस्मरण लिखे जाते हैं जबकि सच यह है कि संस्मरण में व्यक्ति संबंध के कारण महत्वपूर्ण है, अपनी महानताओं के कारण नहीं। जो संबंध किसी भी स्तर पर लेखक की ज़िंदगी को अर्थ देता है, उसमें भराव या खालीपन पैदा करता है, वह संस्मरणीय हो सकता है।

अपनी प्रकृति में संस्मरण मूलतः विधा नहीं है। इसमें कहानी, निबंध, जीवनी, आत्मकथा और रेखाचित्र की अनेक विशेषताएँ संश्लिष्ट हैं। लेकिन प्रचुर लेखन एवं समृद्ध परंपरा ने संस्मरण को एक स्वतंत्र पहचान दी है और इस पहचान के आधार पर ही उसने नयी गद्य-विधाओं में अपनी एक हैसियत बनाई है। जीवन के लौकिक अनुभवों को संबंधों के आलोक में सहेजने की आकांक्षा ने ही संस्मरण-लेखन को प्रेरित किया हे। इसलिए एक विधा के रूप में उसकी स्थिति जानने और उसकी विशिष्टता की पहचान के लिए अन्य विधाओं से उसके संबंधों की संक्षिप्त चर्चा अपरिहार्य है।

21.3 संस्मरण का अन्य साहित्यिक विधाओं से संबंध

जैसा कहा गया है - संस्मरण एक मिश्रित विधा है, फिर भी आज उसकी स्वतंत्र पहचान है। यह पहचान अन्य विधाओं की सापेक्षिकता में है, इसलिए अन्यों के साथ ही उसकी विशिष्टता भी है। यहाँ हम निबंध, कहानी, जीवनी आत्मकथा, रेखाचित्र एवं यात्रा-संस्मरण से संस्मरण की तुलना करते हुए उसकी विशिष्टता की परीक्षा करेंगे।

निबंध और संस्मरण

निबंध की तरह संस्मरण का अस्तित्व भी विधा के रूप में नया है। कालक्रम की दृष्टि से निबंध सस्मरण का पूर्ववर्ती है। दोनों ही गद्य-विधाएँ हैं। निबंध का क्षेत्र संस्मरण की तुलना में अधिक व्यापक है। विषय की निर्बंध विविधता और शैली की अनेकरूपता निबंध में संभव है। भगवती चरण वर्मा की मान्यता है कि संस्मरण निबंध की ही एक शैली है। यद्यपि संस्मरणा में निबंध के कुछ तत्व मिलते हैं लेकिन अपने विकसित एवं व्यावहारिक अर्थ में संस्मरण अपना स्वतंत्र रूप ग्रहण कर चुका है। संस्मरण अनिवार्यतः अतीत से सम्बद्ध होता है, निबंध पर यह अनिवार्यता लागू नहीं होती। संस्मरण का आधार स्मृति है, निबंध का विचार। संस्मरण में संबंधों एवं घटनाओं का संदर्भ सत्य पर आधारित है जबकि निबंध में कल्पनाशीलता अनिवार्य होती है। आत्मीयता संस्मरण का प्रधान गुण है और स्मृति-रक्षा इसका सबसे बड़ा प्रयोजन जबकि निबंध में विचार, तर्क और कल्पनाशीलता के द्वारा अपनी धारणाओं की अभिव्यक्ति निबंध का मूल प्रयोजन है।

कहानी और संस्मरण

कहानी एवं संस्मरण के रचना-विधान का बाहरी ढाँचा मिलता-जुलता है। दोनों ही विधाओं के केंद्र में अतीत होता है। इस केद्र की एकरूपता के कारण ये दोनों विधाएँ एक-दूसरे में संक्रमित होती रहती हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' एवं महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' में संकलित रचनाएँ संस्मरण होने के बावजूद कहानी का-सा प्रभाव पैदा करती है। दूसरी तरफ़ कहानीकार कहानी की रचना-प्रक्रिया के दौरान संस्मरण की राह से गुजरता है। अपने एक साक्षात्कार में उपेन्द्रनाथ अश्क ने कहानी एवं संस्मरण की परस्परता को स्वीकार करते हुए कहा है - "ऐसा हो सकता है कि संस्मरण हू-ब-हू कहानी के रूप में हो। अच्छे लिखे गए संस्मरण और कहानी में अंतर नहीं रहता, विशेषकर जब कोई सिद्धहस्त कथाकार उसे लिखे।" दूसरी तरफ़ आत्मकथात्मक शैली में लिखी जाने वाली कहानियों में सस्मरण की-सी विश्वसनीयता एवं प्रभाव होता है। शिवपूजन सहाय की 'कहानी का प्लाट', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'दे ख़ुदा की राह पर' और निर्मल वर्मा की 'सूखा' कहानियाँ संस्मरण का आभास देती हैं। लेकिन कहानी एवं संस्मरण निश्चित रूप से भिन्न विधाएँ हैं। कहानी की कथावस्तु काल्पनिक होती हैं। इसमें कल्पना एवं कला का संस्पर्श पाकर अवास्तविक भी 'वास्तव' का आभास देता है, जबकि संस्मरण का केंद्र सत्य होता है। यहाँ सत्य आभासित नहीं होता, सृजित होता है। संस्मण में भी कल्पना का प्रयोग होता है, लेकिन इसमें कल्पना की भूमिका संयोजन, अन्वय एवं रचनात्मक प्रभाव पैदा करने की होती है। कहानी में आलम्बन के प्रति कहानीकार की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया भोक्ता के रूप में नहीं होती जबकि संस्मरण में लेखक आदि से अंत तक आलम्बन के साथ एक गहरी आत्मीयता से युक्त होता है। इसलिए कहानी एवं संस्मरण का विधात्मक स्वरूप निश्चय ही एक-दूसरे से भिन्न है।

जीवनी, आत्मकथा एव संस्मरण

जीवनी, आत्मकथा तथा संस्मरण - ये तीनों विधाएँ अतीत के सत्य से जुड़ी होने के कारण सजातीय हैं। लेकिन तीनों में ठोस अंतर भी है। जीवनी-लेखन की प्रक्रिया बहुत कुछ इतिहास-लेखन से मिलती-जुलती है। वस्तुतः जीवनी एक व्यक्ति का इतिहास है। इसलिए जीवनीकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्वग्रह-रहित हो। उसमें दृष्टा-भाव हो, भोक्ता-भाव नहीं। जीवनी का विस्तार सम्बद्ध व्यक्ति के पारिवारिक-सामाजिक संदर्भों के साथ उसके स्वभाव और

वृत्ति की आंतरिक संरचना तक होता है।'आत्मकथा' का रचयिता स्वयं लेखक होता है इसलिए आत्मपरकता 'आत्मकथा' का मूल आधार होती है। घटनाओं के चयन या त्याग का अधिकार आत्मकथा लेखक को होता है। आत्मकथा लेखक के अपने अनुभव एवं स्मृति के आलोक में अपने समूचे जीवन का पुनरावलोकन है। संस्मरण में जीवनी और आत्मकथा के कुछ तत्व हो सकते हैं। संस्मरण जीवनी-लेखन में संदर्भ स्रोत की भूमिका निभा सकता है। लेकिन इन विधाओं का स्वतंत्र अस्तित्व सर्वस्वीकृत है। जीवनी में जीवनीकार का निजी जीवन शामिल नहीं होता जबकि संस्मरण में लेखक आद्योपांत उपस्थित रहता है। संस्मरण का सत्य स्वयं लेखक के द्वारा अनुभूत होता है। जीवनी में यह संभव भी नहीं है और अपेक्षित भी नहीं। इसी तरह संस्मरण आत्मकथा से भी भिन्न है। आत्मकथा के केंद्र में लेखक का अपना जीवन होता है। संस्मरण के केंद्र में स्मरणीय व्यक्ति रहता है। आत्मकथा में संस्मरण के टुकड़े हो सकते हैं। अतः विस्तार की दृष्टि से भी संस्मरण जीवनी एवं आत्मकथा से भिन्न होता हे। संस्मरण का आकार उक्त विधाओं की तुलना में छोटा होता है, क्योंकि उसमें समग्रता का विस्तार अपेक्षित नहीं।

यात्रा-वृत्त एवं संस्मरण

यात्रा-वृत्त एवं संस्मरण तात्विक रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। यात्रा-वृत्त संस्मरण का ही एक विशिष्ट रूप है, इसलिए यात्रा-वृत्त को 'यात्रा संस्मरण' भी कहने का रिवाज़ है। दरअसल यात्रा-वृत्त एव संस्मरण में अंतर विषयवस्तु के धरातल पर ही है। यात्रा-वृत्त यायावर के अनुभव, सौंदर्य बोध एवं प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति है। इसमें भौगोलिक विस्तार, प्राकृतिक सौंदर्य एव यात्रा की महत्वपूर्ण घटनाएँ शामिल होती हैं। यात्रा-वृत्त का उपजीव्य अनुभव का वास्तविक जगत ही होता है। इस दृष्टि से यात्रा-वृत्त का संस्मरण से सीधा संबंध है। यात्रा-वृत्त की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं - "यात्रा-संस्मरण का एक पक्ष भूगोल के आकर्षण से जुड़ा है। देश-दर्शन यात्रा-संस्मरण की मूल वृत्ति है जिसमें एक ओर प्रकृति की पुकार है, दूसरी ओर साहसिक जिज्ञासा। यात्रा मानो विराट मानवीय विकास का ही एक सीमित प्रतीक है। इस दृष्टि से यात्रा-संस्मरण लेखक और पाठक दोनों के लिए एक आदिम प्रतीक या पुराण-कथा की भाँति बार-बार अपने को खोलता चलता है।" संस्मरण और यात्रा-वृत्त का मूल पार्थक्य इनके केंद्रों के स्तर पर है। संस्मरण के केंद्र में सामान्यतः एक व्यक्ति होता है जिसे लेखक संबंधों के आत्मीय आलोक में चित्रित करता है, जबकि यात्रा-वृत्त भूगोल और यात्री के राग-संवेदन की संश्लिष्ट पुनर्रचना है। भूगोल के अतिरिक्त कुछ यात्रा-संस्मरणों में समाज, इतिहास और संस्कृति की तह तक पहुंचने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। ऐसे यात्रा-संस्मरणों में अज्ञेय की 'एक बूँद सहसा उछली' और निर्मल वर्मा की 'चीड़ों पर चाँदनी' की चर्चा की जा सकती है।

रेखाचित्र एवं संस्मरण

आधुनिक गद्य-विधाओं में रेखाचित्र एव संस्मरण एक दूसरे के सर्वाधिक निकट है। ये विधाएँ अपने रूप, रचना-प्रक्रिया एवं आस्वाद के धरातल पर एक दूसरे में संक्रमित होती हुई एक ही विधा का आभास देती हैं। इसलिए सैद्धांतिक स्तर पर इन्हें अलगाया तो जा सकता है, लेकिन रचनात्मक स्तर पर ये एक-दूसरे से संगुम्फित हैं। महादेवी वर्मा की 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' - रचनाएँ विधा के स्तर पर रेखाचित्र भी हैं और संस्मरण भी। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' में रेखाचित्र एवं संस्मरण का अंतर्लयन हो गया है। लेकिन गहराई से विश्लेषण करने पर इन विधाओं में अंतर की लकीरें दिखाई देती है।

रेखाचित्र में रूपाकृति की संरचना पर बल होता है। अतः इसमें अतीत, घटनाओं से नहीं, बल्कि रूप की स्मृति से आलोकित होता है। संस्मरण के केंद्र में घटनाओं एवं मनोभावों से निर्मित अतीत होता हे। रेखाचित्र का अतीत वस्तुगत होता है जबकि संस्मरण का आत्मगत। रेखाचित्र में लेखक विषय को उसकी स्थिरता में पकड़ता है जबकि संस्मरण में अनुभव की गत्यात्मकता में। रेखाचित्र में रचनाकार स्मृति को चित्रात्मक धरातल पर उपलब्ध करता है जबकि संस्मरण

में संबंधों की परतदार एवं गतिशील स्मृतियाँ प्रधान होती हैं। रेखाचित्र में लेखक का व्यक्तित्व अनुपस्थित रह सकता है जबकि संस्मरण में लेखक के जीवन का उद्घाटन भी होता चलता है। रेखाचित्र में पर्यवेक्षण प्रधान होता है, संस्मरण में संवेदन।

लेकिन जैसा कहा गया है कि ये विधाएँ परस्परता के सूत्र से इस तरह बँधी हुई हैं कि उक्त अंतरों को आत्यंतिक नहीं कहा जा सकता। महादेवी वर्मा के स्पष्ट, निर्धारित रेखाचित्रों में भी उनका निजत्व इतना लीन हो गया है कि वे संस्मरण का आस्वाद देते हैं। इसके विपरीत उनके संस्मरणों की परिणति भी रूपांकन की प्रबलता के कारण रेखाचित्र में हो गई है। वस्तुतः अनेक बिंदुओं पर ये दोनों विधाएँ एक दूसरे से उपकृत होती हुई विकसित हुई हैं।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि संस्मरण एक मिश्रित विधा है, इसलिए उसका यांत्रिक तथा शुद्ध पैमाना नहीं बनाया जा सकता। फिर भी रचना की निरंतरता एवं विकास-प्रक्रिया में संस्मरण ने अपनी एक पहचान कायम की है। आज इस विधा का विपुल भण्डार है और वह क्रमशः वर्णन अथवा याद की सपाटता से चलकर एक संश्लिष्ट, सर्जनात्मक धरातल उपलब्ध कर सका है।

21.4 हिंदी में संस्मरण-लेखन की परंपरा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल को गद्य काल की संज्ञा दी और अकाल्पनिक गद्य के क्षेत्र में निबंध की चर्चा की। लेकिन गद्य की अन्य नयी गद्य-विधाओं का उल्लेख उन्होंने नहीं किया। इससे पता चलता है कि बीसवीं-शताब्दी के चौथे दशक तक अकाल्पनिक गद्य-विधाओं की कोई विशिष्ट पहचान नहीं बन सकी थी। यद्यपि हिंदी में संस्मरण-लेखन का सिलसिला इस शताब्दी के तीसरे दशक में शुरू हो चुका था, लेकिन विधा के रूप में उसकी स्वतंत्र पहचान पाँचवें दशक में ही हो सकी।

हिंदी के आरंभिक संस्मरणकारों में पहला महत्वपूर्ण नाम पद्मसिंह शर्मा का है जिन्होंने संस्मरण को एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने के साथ उसे एक स्वतंत्र पहचान भी दी। सन् 1929 में उनकी संस्मरणात्मक 'पद्म पराग' का प्रकाशन हुआ जिसमें महाकवि अकबर, सत्यनारायण कविरत्न, भीमसेन शर्मा आदि पर मार्मिक संस्मरण हैं। ये संस्मरण भावुकता से संचालित होने के साथ हल्के विनोद-भाव से भी सम्पृक्त हैं। संस्मरण-लेखन के क्षेत्र में प्रसिद्ध पत्रकार बनारसी दास चतुर्वेदी का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। **संस्मरण** शीर्षक से उनकी पुस्तक का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ। इस पुस्तक में चतुर्वेदी जी ने श्रीधर पाठक, द्विजेंद्र नाथ ठाकुर, गणेश शंकर विद्यार्थी किशोरी लाल गोस्वामी आदि पर प्रभावशाली ढंग से लिखा। इन संस्मरणों में व्यक्तित्व-विश्लेषण का उपक्रम कम है, व्यक्तित्व से अभिभूत होने की प्रवृत्ति अधिक है। इनके संस्मरणों की रचना-प्रक्रिया छोटी-छोटी घटनाओं और पत्रों का सहारा लेकर सम्पन्न होती है इसलिए स्मरणीय की चारित्रिक वृत्तियों की पकड़ संभव नहीं हो पाती। कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' की संस्मरण-पुस्तक का प्रकाशन सन् 1956 में **दीप जले शंख बजे** शीर्षक से हुआ। साधारण के प्रति आकर्षण तथा स्वस्थ एवं नैतिक जीवन की माँग का स्वर उनके संस्मरणों में मुखर है। संस्मरण लेखन के क्षेत्र में महादेवी वर्मा को महारत हासिल है। यूँ तो महादेवी जी के गद्य-लेखन में संस्मरण एवं रेखाचित्र एक दूसरे में संक्रमित होते रहते हैं, इसलिए यह कह पाना सरल नहीं कि उनकी कौन-सी पुस्तक विशुद्ध रेखाचित्र है और कौन-सी विशुद्ध संस्मरण। फिर भी विचारपूर्वक यह कहा जा सकता है कि सन् 1956 में प्रकाशित **पथ के साथी** में संस्मरण का रंग गहरा है। इसमें उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा छायावाद के तीनों महारथियों - प्रसाद, निराला, पंत पर अविस्मरणीय संस्मरणों की सृष्टि की है। संस्मरण-लेखन की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी का छठा दशक बहुत उर्वर रहा है। हमारा प्रतिपाद्य विषय अज्ञेय की **स्मृति-लेखा** में संकलित

वसंत का अग्रदूत है। अतः यहाँ संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण संस्मरणकारों एवं उनकी पुस्तकों का उल्लेख ही उचित होगा - शांतिप्रिय द्विवेदी - पथचिह्न (1941 ई.), रामवृक्ष बेनीपुरी - माटी की मूरतें (1946 ई.), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' - व्यक्तिगत (1954 ई.), उपेन्द्रनाथ अश्क - मंटो : मेरा दुश्मन (1956), शिवरानी देवी - प्रेमचंद : घर में 91956 ई.) जैनेन्द्र कुमार - ये और वे, माखन लाल चतुर्वेदी - समय के पाँव (1962 ई.), जगदीश चन्द्र माथुर - दस तस्वीरें (1963 ई.), रामधारी सिंह दिनकर - लोकदेव नेहरू (1965 ई.)।

अज्ञेय की **स्मृति लेखा** संस्मरण लेखन की इस परंपरा की महत्वूर्ण कड़ी है। इसमें बारह व्यक्तियों के संस्मरण हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है - भारत कोकिला (सरोजनी नायडू), राष्ट्रकवि (मैथिलीशरण गुप्त), स्मरण का स्मृतिकार (रायकृष्ण दास), उपन्यास-सम्राट (प्रेमचंद), वसंत का अग्रदूत (सूर्यकांत त्रिपाठी निराला) स्वर-सिद्ध (सुमित्रानंदन पंत), कवि-वत्सला (होमवती देवी), एक भारतीय आत्मा : एक चुनौती (माखनलाल चतुर्वेदी), धरती का धनी (फणीश्वरनाथ रेणु), समय-सूर्य (रामधारी सिंह दिनकर), बीसवीं शताब्दी का बाणभट्ट (हजारी प्रसाद द्विवेदी) तथा असीम औ ससीम के बीच (बालकृष्ण शर्मा नवीन)। ये सभी व्यक्तित्व साहित्य जगत से सम्बद्ध हैं। अज्ञेय अपनी अन्तर्मुखता के कारण चर्चित रहे हैं, लेकिन इन संस्मरणों में वे सहज, उन्मुक्त और मुखर हैं। इन संस्मरणों में स्मरणीय को एक मनुष्य एवं रचनाकार - दोनों रूपों में देखा गया है। व्यक्ति एवं रचनाकार के बीच जो एक अदृश्य सूत्र होता है उसे पहचानने और व्याख्यायित करने का प्रयास यहाँ दिखाई देता है। इस स्तर पर ये संस्मरण सम्बद्ध रचनाकारों की ज़िंदगी के उन हिस्सों को सामने ले आते हैं जो उनके रचना-संसार को समझने की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। अपने वरिष्ठ रचनाकारों पर अज्ञेय ने जिस तरह से लिखा है उससे परंपरा और आधुनिकता के अंतर्संबंधों पर प्रकाश पड़ता है। ये सभी संस्मरण गलदश्रु भावुकता एवं अंध विद्वेष के अतिवाद से मुक्त हैं। अज्ञेय की रचना-प्रक्रिया में बौद्धिकता की भूमिका महत्वपूर्ण रही है और ये संस्मरण भी लेखक के बौद्धिक मिज़ाज से अछूते नहीं हैं। इस बौद्धिकता ने इन संस्मरणों में एक संतुलन पैदा किया है। एक गहरी विनम्रता का भाव इन संस्मरणों में आद्योपांत विद्यमान है। अज्ञेय के अनुसार इन संस्मरणों का मूल लक्ष्य उस मूल्यवान स्मृति को सुरक्षित रखना है जो हर वर्तमान को एक दिशा, पहचान और संस्कार देती है। 'स्मृति-लेखा' की मूल प्रेरणा की चर्चा करते हुए, उसके दूसरे संस्करण की भूमिका में अज्ञेय लिखते हैं, हमारे साहित्यिक संवेदन का निर्माण करने वाले, संस्कार देने वाले और हमारी अस्मिता से पहचान कराने वाले श्रद्धेय रचनाकारों की स्मृति को सुरक्षित रखना ही इन संस्मरणों की मूल प्रेरणा है। अखबारी एक आयामिता एवं तात्कालिकता वाले इस वर्तमान में हमारी महान् प्रतिभाओं की प्रतिभा पर पड़ी हुई धूल को झाड़कर उन्हें बार-बार पहचानने योग्य बनाना- इन संस्मरणों की सार्थकता का आधार हो सकता है।

21.5 'वंसत का अग्रदूत' की विशिष्टता

वंसत का अग्रदूत के सम्यक विश्लेषण के लिए संक्षेप में 'स्मृति-लेखा' के अन्य संस्मरणों पर एक संक्षिप्त चर्चा उचित होगी। जैसा कि कहा गया है - ये संस्मरण अज्ञेय की रचना-दृष्टि, परंपरा-बोध एवं सांस्कृतिक-चेतना के भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं, इसलिए संदर्भानुसार इन प्रसंगों का उल्लेख भी किया जाएगा। 'स्मृति-लेखा' का पहला संस्मरण भारत कोकिला सरोजनी नायडू से सम्बद्ध है। श्रीमती नायडू प्रखर वक्ता राजनेता होने के साथ अंग्रेज़ी की कवयित्री भी थीं। अंग्रेज़ी में लिखने वाले भारतीय रचनाकारों की औसत प्रतिभा भी साम्राज्यवादी भाषा का दबदबा और उसकी व्यापक स्वीकृति है। इस स्थिति पर अपनी टिप्पणी में अज्ञेय लिखते हैं, "बड़ा दिखाने वाले मुकुर में जैस बिम्ब से प्रतबिंब बड़ा दीखने लगता है, वैसे ही अंग्रेज़ी में लिखने वाले भारतीय की प्रतिभासित देशी छवि भी बहुत बड़ी दीखने लगती है।"

मैथिलीशरण गुप्त यानी दद्दा को अज्ञेय ने अपना गुरू-स्थानीय मानते हुए संस्मरण का आरंभ किया है। मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली हिंदी के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने भाषा के साथ

हिंदी कविता के लिए एक नया पाठक वर्ग तैयार किया। परंपरागत कविता के संस्कारों में बुनियादी परिवर्तन करते हुए उसे युग-आकांक्षा से जोड़ा। भारतीयता, देश भक्ति, प्रकृति-चित्रण एवं पौराणिक अख्यानों के ढाँचे को सुरक्षित रखते हुए उनमें अपने वर्तमान की चिंताओं के समावेश के द्वारा हिंदी कविता की नयी संभावनाओं का द्वार उन्होंने खोला। अज्ञेय लिखते हैं, "कैसे बिना परंपरा से नाता तोड़े, नये चिंतन को भी आत्मसात करते हुए युवतर पीढ़ी के लिए एक चुनौती बने रह सके - यह नये लेखक के लिए समझने की बात है। परंपरा तोड़े बिना कैसे आधुनिक हुआ जा सकता है - इसका उदाहरण **हिंदू** से लेकर **यशोधरा** तक की उनकी काव्य-यात्रा में प्रत्यक्ष दीखता है।" इस संस्मरण में अज्ञेय ने दद्दा के व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है, लेकिन उनके व्यक्तित्व की जो विशेषता चकित करती है, वह है - ठेठ किसानी सहजता एव संस्कार के साथ मशीनों के प्रति गहरा आकर्षण। अज्ञेय की यह टिप्पणी गुप्त जी के कवि व्यक्तित्व के साथ न्याय करती है कि - '**वह विरोधाभासों के संगम पर पनपने वाले इस प्राचीन देश किंतु नये राष्ट्र के कवि हैं।**'

उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद पर लिखे गए संस्मरण में व्यक्तिगत संबंधों की चर्चा बहुत कम है। दरअसल उसे संस्मरण नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद की औपन्यासिक चेतना तथा हिंदी-कथा साहित्य को उनकी देन पर बहुत गहराई और विस्तार के साथ विचार किया गया है। अज्ञेय के अनुसार प्रेमचंद ने साहित्य और साहित्यकार की जवाबदेही तय की। साहित्यकार समाजसेवी है और साहित्य-कर्म मूलतः साधना। प्रेमचंद की दृष्टि में साहित्यकार के लिए साधना का बहुत महत्व होता है। अज्ञेय ने प्रेमचंद की इस धारणा को आत्मसात किया है और संभवतः इसी आधार पर रचना में विचारधारात्मक सत्य एवं आनुभूतिक सत्य के सापेक्षिक महत्व का निर्धारण किया है।

प्रेमचंद की औपन्यासिक चेतना के संबंध में अज्ञेय की धारणाएँ प्रगतिवादी निष्कर्षों के विरोध में हैं, लेकिन वे समझ और आस्वाद की नयी दिशाओं का द्वार खोलती हैं - "प्रेमचदं के साहित्य का बुनियादी मूल्य संघर्ष का नहीं, समवेदना का, महाकरूणा का था। प्रेमचंद के श्रेष्ठ उपन्यास **गोदान** का होरी इस करूणा का प्रतीक है।"

छायावाद के महत्वपूर्ण स्तंभ एवं प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंद पंत पर लिखे संस्मरण में उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं, मानसिक अवसादों एवं रचना-प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। पंत को छायावादियों में सबसे पहले प्रतिष्ठा मिली, ख्याति मिली, लेकिन निर्मम आलोचनाओं का कहर भी उन्हीं पर टूटा। बीमारी, आलोचनात्मक प्रहार और भीतरी सूजनात्मकता की सिकुड़ती तरंगों ने पंत को कहीं बहुत अकेला कर दिया था, जिसका असर उनके स्वभाव एवं व्यक्तित्व पर पड़ा। अज्ञेय के अनुसार पंत वैसे भी स्वभाव से संकोची तथा बेहद संवेदनशील थे। इसी कारण तुनक मिज़ाज भी। उनके स्वभाव में एक विशेष प्रकार की परनिर्भरता थी। पंत को अज्ञेय ने हिंदी का कालिदास कहा है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण और समर्थ संवेदनामयी संप्रेषी भाषा का दुर्लभ संयोग पंत की रचनाशीलता में दिखायी देता है।

माखन लाल चतुर्वेदी के संबंध में अज्ञेय लिखते हैं कि वे भारतीय अस्मिता को रूपायित करने वाले रचनाकार थे। स्वाधीनता का आह्वान उनके यहाँ महज शब्द के स्तर पर नहीं है, बल्कि स्वाधीनता तो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा है। फणीश्वरनाथ रेणु के साथ अज्ञेय के रिश्ते बहुत सघन और एक सीमा तक अनौपचारिक हैं। इसलिए उन पर लिखे गए संस्मरण में एक खुलापन है। घटनाओं, मुलाकातों एव परिवेश को ब्यौरों में वर्णित किया गया है। इस संस्मरण की संरचना में अलग-अलग स्मृति-खंडों को संयोजित किया गया। प्रत्येक स्मृति खंड रेणु के व्यक्तित्व के किसी-न-किसी पक्ष को उद्घाटित करता है। हर स्मृति टेक की तरह उस अंतिम मुलाकात पर लौटती है जो पटना के अस्पताल के एक बिस्तर पर हुई थी। रेणु का देहांत हो गया था। देहांत द्वारा उत्पन्न हुई रिक्तता की पीड़ा से यह संस्मरण आवेशित है। इसलिए आत्मीयता भी है और उदासी की एक महीन लय भी। रेणु गाँव के रचनाकार हैं लेकिन यह

गाँव किताबों अथवा मतवादों की झोली से नहीं निकला है। एक बेहद जीवंत और सम्पूर्ण चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है। अज्ञेय के अनुसार 'अकेले रेणु के उपन्यासों में गाँवों की समस्त बुराई, कमनगी और गज़ालत के बीच एक अखंड मानवी विश्वास की चिनगारी सुलगती दीखती है।' बेपनाह कारूण्य रेणु के कथा-संसार में मिलता है। **मैला आंचल** रेणु की ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय कथा-साहित्य की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। स्वतंत्र भारत के गाँव की समूची ज़िंदगी अपूर्व रचनात्मक आवेश के साथ अपनी यथार्थता में यहाँ उपस्थित है। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी को अज्ञेय ने बीसवीं शताब्दी का बाणभट्ट कहा है। उनके व्यक्तित्व में आचार्यत्व एवं सहजता का दुर्लभ संयोग था। आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियों के प्रति पंडित जी में गहरी सहानुभूति थी। अपने संस्मरण में अज्ञेय ने पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व की सीमाओं की ओर भी इशारा किया है। वे सहज थे, लेकिन उनमें निर्णय लेने और संकल्प शक्ति का अभाव था। प्रकाण्ड पांडित्य शायद उनकी ज़िंदगी को बुनियादी स्तर पर नहीं बदल पाया था। ज्ञान तो मुक्त करता है, निर्भयता देता है - लेकिन पंडित जी के जीवन में उसकी ऐसी भूमिका नहीं दिखाई देती। उनके व्यक्तित्व की इस कमज़ोरी का लाभ उनके प्रिय शिष्यों ने अपने हितों के लिए किया। पंडित जी के व्यक्तित्व एवं लेखन का मूल्यांकन करते हुए अज्ञेय लिखते हैं - 'आचार्यत्व से और ऊपर भी उनका एक पद युगावधि सुरक्षित रहेगा - एक ऐसे विद्वान का पद जो अपनी सारी विद्वता को मुट्ठी भर धान की तरह बाँटता बिखेरता हुआ हँसता है, हँसाता है,ऐसी हँसी जो मानवीय सहानुभूति के किसी गहरे स्रोत से फूट कर निकलती है।' बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और अज्ञेय में साझीदारी सबसे अधिक है। नवीन की बेचैन बौद्धिकता का साया अज्ञेय पर भी है। नवीन के चरित्र को अज्ञेय ने महाकाव्यात्मक नायक के अनुरूप पाया है। उनमें विराट एवं अंतर्विरोधी धर्मों का अनुष्ठान है - 'परम वैष्णव, चरम साहसी, अत्यंत भावुक, वज्रादपि कठारे (और निश्चय ही कुसुमादपि मृदु), सदैव फक्कड़ हंसी लिए हुए लेकिन ट्रेजेडी की संभावनाओं से भरा हुआ।'

इन संस्मरणों से **वसंत का अग्रदूत** किंचित अलग दिखायी देता है। निराला को लेकर अज्ञेय के मन में एक गहरा प्रायश्चित बोध है। कवि रूप में वे नयी रचनाशीलता की प्रेरणा एवं पथ प्रदर्शक भी हैं। विपरीत जीवन-परिस्थितियों में, शरीर ओर मन की टूटन के बावजूद निराला की अप्रतिहत रचनाशीलता स्वयं में एक मूल्य है। इस संस्मरण में निराला को देखने वाली आँख दूसरों के पैमानों पर निराला को नहीं परखती, बल्कि निराला यहाँ स्वयं ही प्रतिमान है। अज्ञेय ने निराला के व्यक्तित्व एवं रचना के अनेक आयामों को चित्रित किया है। अपनी सम्पूर्णता में यह संस्मरण भी करूणासिक्त है। सन् 1940 में विश्व भारती के एक अंग्रेज़ी त्रैमासिक पत्र में अज्ञेय ने निराला के लिए लिखा था - 'निराला इज डेड।' निराला की सृजनशीलता की मृत्यु-घोषणा का पछतावा अज्ञेय के मन में तो है ही, निराला भी इससे कम आहत नहीं हैं। हालांकि संस्मरण की भूमिका में और **वसंत का अग्रदूत** में भी यह स्पष्ट किया गया है कि निराला को उक्त लेख की जानकारी नहीं थी। किंतु 'निराला इज डेड' की आवृत्ति निराला कई बार करते हैं जिससे निराला के आहत मन और गहरे अवसाद का संकेत मिलता है। इस संस्मरण में निराला के मनुष्य रूप एवं कवि रूप में निहित अद्वैत को रेखांकित किया गया है। निर्बन्धता या स्वातंत्र्य - उनके दोनों रूपों का केंद्रीय सूत्र है। अपने प्रार्थना-गीतों में इस निर्बंधता की आकांक्षा को निराला प्रकट करते हैं :

'काट बंध डर के बंधन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।'

वसंत का अग्रदूत में निराला की प्रयोगधर्मी सृजन-चेतना की पहचान की गई है। वे क्लासिकल कवि भी हैं और प्रयोगधर्मी भी। विराट औदात्य एव परिचित सहजता की अकुंठ समानांतरता निराला को विशिष्ट पहचान देती है। इस संस्मरण में निराला के व्यक्तित्व के साथ उनकी सृजनशीलता के अनेक आयामों का भी उद्घाटन किया गया है। इस दृष्टि से यह संस्मरण

निराला को समझने के साथ अज्ञेय को जानने का भी अवसर देता है। अपने-अपने युग के प्रतिनिधि कवियों को संस्मरण के विधान में पाना - निश्चय ही बहुत दिलचस्प और सार्थक है।

21.6 'वसंत का अग्रदूत' की अंतर्वस्तु

वसंत का अग्रदूत में निराला को सम्पूर्णता में जानने की कोशिश की गई है। अज्ञेय निराला के अंतरंगों में नहीं हैं, लेकिन अनेक मुलाकातों में उन्होंने निराला को जिस रूप में देखा और समझा है, उन्हीं मुलाकातों की पगडंडियों के सहारे इस महाकवि की ज़िंदगी की गहराइयों में उतरने का उन्होंने प्रयास किया है। निराला को महान् बनाने या क्षुद्र बताने का कोई आग्रह अज्ञेय में नहीं है। एक सामान्य मनुष्य अपनी सीमाओं-संभावनाओं एवं संघर्षों के साथ ही सार्थक रचनाकार होता है। इस धारणा का निर्वाह इस लेख में निरंतर मिलता है। निराला शराब पीते हैं, मांस भक्षी है, अक्खड़ता उनके स्वभाव में है, लेकिन इसके बावजूद उनमें मानवीय गुणों की प्रचुरता है। सभी कमज़ोरियों के साथ वे करूणावान हैं, संस्कारी हैं तथा सार्थक रचनाकार हैं। दरअसल किसी भी रचनाकार अथवा मनुष्य को मापने के ऊपरी पैमाने बहुत छोटे और अपर्याप्त होते हैं। इन बाहरी पैमानों के आधार पर लिए गए निर्णय स्वयं में कितने विकलांग होते हैं - इसका आभास निराला के लिए की गई आलोचनाओं से स्पष्ट है। लेकिन निराला को अज्ञेय विशिष्ट मानते हैं। विडम्बना एवं कारूण्य के द्वारा ही उन्हें समझा जा सकता है। **वसंत का अग्रदूत** की अंतर्वस्तु के तीन मुख्य बिंदु हैं : (1) निराला का व्यक्तित्व, (2) निराला के भावबोध के मुख्य आयाम, (3) परवर्ती रचना-पीढ़ी के प्रति निराला की दृष्टि। हम क्रमशः इन बिंदुओं पर विचार करेंगे।

निराला का व्यक्तित्व

निराला के व्यक्तित्व में ढली हुई समरूपता का अभाव है, इसलिए वह प्रामाणिक भी है और मध्यवर्गीय धारणाओं की सुरक्षित पवित्रता को झटका भी देता है। अपने पहले साक्षात्कार के संबंध में अज्ञेय लिखते हैं - "एक चौकी के निकट आमने-सामने निराला और 'उग्र' बैठे थे। दोनों के सामने चौकी पर अधभरे गिलास रखे थे और दोनों के हाथें में अधजले सिगरेट थे।" एक दूसरा प्रसंग भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - "होमवती जी ने श्रद्धापूर्वक निराला जी को ठहरा तो लिया लेकिन दोपहर का भोजन उन्हें करा लेने के बाद वह दौड़ी हुई मेरे यहाँ आईं। भाई जी, शाम का क्या होगा? लोग तो कह रहे हैं कि निराला जी तो शाम को शराब के बिना भोजन नहीं करते और भोजन भी माँस के बिना नहीं करते। हमारे यहाँ तो यह सब नहीं चल सकता।" यह निराला की मूर्तिभंजक छवि है। इन उद्धरणों से यह भी आभास होता है कि संस्मरणकार निराला को देवत्व मंडित मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक मनुष्य के रूप में पहचानना और जानना चाहता है। एक तरफ निराला का यह रूप है तो दूसरी तरफ महादेवी उनके दूसरे रूप को प्रस्तुत करती हैं। **पथ के साथी** में निराला को याद करते हुए वह लिखती हैं - 'साहित्यकार संसद में सब सुविधाएँ सुलभ होने पर भी उन्होंने स्वयं पाकी बनकर और एक बार भोजन करने का जो अनुष्ठान आरंभ किया था, उसकी तो मैं अभ्यस्त हो चुकी थी। पर अचानक एक दिन उन्होंने पाव भर गेरू मँगाने का आदेश दिया... उन्होंने अपना मंतव्य स्पष्ट किया, 'अब हम संन्यास लेंगे।"... एकादशी के सवेरे स्नान-हवन आदि करके जब वे निकले तब वैदिक परिधान पहन चुके थे। अँगोछे के अभाव और वस्त्रों में रंग की अधिकता के कारण उनके मुँह-हाथ आदि ही नहीं, विशाल शरीर भी गैरिक हो गया था, मानो सुनहली धूप में धुला गेरू के पर्वत का कोई शिखर हो।" निराला के व्यक्तित्व का एक तीसरा पक्ष - भी अवलोकनीय है। निराला के अंतरंग एवं जीवनीकार डॉ. रामविलास शर्मा ने "निराला की साहित्य-साधना" भाग-1 में उनके व्यक्तित्व के अत्यंत मार्मिक पक्ष का उल्लेख किया है - उस समय निराला लखनऊ में थे और विकट आर्थिक संघर्ष में पड़े थे। यह 1935 का साल था। जुलाई का महीना। एक दिन डाकिये ने आवाज़ दी पंडित जी। वे खुद ही नीचे गये। लौटते हुए ज़ीने से ही बोले - डाक्टर, सरोज इज़ नो मोर। वे कार्ड लिए हुए कमरे में आये। चेहरा दुख के मारे जैसे सपाट हो गया था। उन्होंने न एक भी आँसू गिराया, न एक भी शब्द कहा। कुछ देर

तक कमरे में चक्कर लगाते रहे। फिर कुर्ता पहना, छड़ी उठाई और घर से बाहर निकल गए।" भोग, संन्यास और घनीभूत राग की त्रिवेणी को निराला का व्यक्तित्व समाहित कर लेता है। यह निरालापन ही निराला को बौने पैमानों में अँटने नहीं देता। निराला का व्यक्तित्व इस धारणा की भी पुष्टि करता है कि मनुष्य को नापने के लिए बाहरी प्रतिमान अपर्याप्त है। जीवन की बनैली प्रतिकूलताओं से जूझने वाले कवि का व्यक्तित्व हमारी धारणाओं को तोड़ता और पुष्ट करता चलता है। निराला के व्यक्तित्व के संबंध में महादेवी जी ने ठीक ही लिखा है - 'यदि वे हमारे कल्पित साँचे में समा जावें तो उनकी विशेषता ही क्या रहे! '

निराला के व्यक्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है - उनका किसानी संस्कार। किसान और प्रकृति के बीच जो अनिवार्य एवं आत्मीय रिश्ता होता है - निराला के काव्य में वह मौजूद है। ऋतुओं, वनस्पतियों एव बादल की इतनी सघन उपस्थिति आधुनिक हिंदी कविता में दुर्लभ है। निराला की कविता में बादल बहुत हैं। लेकिन ये बादल न तो कालिदास के हैं और न पंत के। इन बादलों को निराला किसानी आँखों से देखते हैं और जीवन को रससिक्त करने वाले बादलों तक किसान की पुकार को कविता में प्रक्षेपित करते हैं :

जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!

बादल निराला के यहाँ मात्र उपादान या उद्दीपन नहीं है। उसके साथ कवि का रिश्ता बहुत गहरा है। रेत में तब्दील होता हुआ जीवन है, क्योंकि स्नेह का निर्झर बह गया है। ग्रीष्म से दहकता हुआ आकाश प्रलय का दृश्य उपस्थित कर रहा है, धूल उड़ रही है और कुछ भी दिखाई नहीं देता। यह निदाघ प्रकृति में भी है और जीवन में भी। इसलिए निराला बादल से अपने मन की सघनतम पीड़ा का साझा करते हैं :

'बादल रे, जी तड़पे।
अब अंधियाली ही बढ़ती है
छाया पर छाया चढ़ती है
प्राणों के घनश्याम गगन में
बूँद कभी न बरसे? '

निराला की प्रार्थनाओं में पानी, संगीत और हरियाली की पुकार है। भावना का आवेग और प्रार्थना की आर्द्रता निराला की कविता में गति और आत्मीयता की अद्‌भुत ऋतु का सृजन करती है :

झर झरझर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरू-तरू-मर्मर सागर में,
सरित-तड़ित-गति चकित पवन में
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में, रव-घोर कठोर
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर! '

बादलों के साथ यह गहरा रिश्ता किसानी संस्कार के कारण है। इस रिश्ते के बल पर निराला ने भारतीय कविता के बादल बदल दिए हैं। अज्ञेय ने निराला के किसानी संस्कारों को उसकी मानसिकता एवं सौंदर्य प्रतिमानों के संदर्भ में उठाया है। कद-काठी किसानी सौंदर्य-बोध का मूल आधार है। **'वसंत का अग्रदूत'** में अज्ञेय ने एक रोचक प्रसंग का वर्णन किया है। अपनी पहली भेंट के बारे में अज्ञेय लिखते हैं - 'निराला ने सिर से पैर तक मुझे देखा। मेरे नमस्कार के जवाब में केवल कहा बैठो।' मैं बैठने ही जा रहा था कि एक बार फिर उन्होंने कहा, 'जरा सीधे खड़े हो जाओ।' मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ, लेकिन मैं फिर सीधा खड़ा हो गया।

निरालाजी भी उठे और मेरे सामने आ खड़े हुए। एक बार उन्होंने सिर से पैर तक मुझे देखा, मानो तौला और फिर बोले, 'ठीक है'। फिर बैठते हुए उन्होंने मुझे भी बैठने को कहा। मैं बैठ गया तो माना स्वगत स्वर से उन्होंने कहा, 'डौल तो राम बिलास जैसा ही है।'

निराला के किसानी संस्कार का दूसरा पक्ष है - उनकी आतिथ्य भावना। यह उनके व्यक्तित्व का ऐसा पक्ष है जो किंवदंती की सीमा तक चर्चित है। निराला के जीवन की दारूण विपन्नता एवं आतिथ्य-भावना का यह गठजोड़ करूणा उत्पन्न करता है। जो कवि आर्थिक पथ पर व्याप्त अनर्थों के कारण हमेशा जीवन-समर में पराजित होता रहा, जो अपने बच्चों के भरण-पोषण में अपने को हमेशा असमर्थ पाता रहा, उसके यहाँ आतिथ्य की यह सजगता अवसाद की सृष्टि करती है। इस महाकवि के कक्ष का एक चित्र महादेवी के शब्दों में द्रष्टव्य है, "आले पर कपड़े की आधी जली बत्ती से भरा, पर तेल से खाली मिट्टी का दिया, रसोई घर में अधजली दो-तीन लकड़ियाँ, औंधी पड़ी बटलोई और खूँटी से लटकती हुई आटे की छोटी सी गठरी आदि मानो उपवास चिकित्सा के लाभों की व्याख्या कर रहे थे।" यह है निराला का घर। मगर हृदय कितना बड़ा है कि कोई भी उनके यहाँ से खाये बिना नहीं लौट सकता। आत्मकेंद्रित होती सभ्यता की इस अमानिशा में निराला **केवल जलती मशाल** से दिखाई देते हैं। अज्ञेय ने भी निराला की इस द्रवित करने वाली आतिथ्य-भावना का उल्लेख किया है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' के साथ अज्ञेय जब निराला के घर पहुँचे तो निराला खाना बना रहे थे। आगे का वृत्तांत अज्ञेय के शब्दों में - "इस बीच निराला एक बड़ी बाटी में कुछ ले आये और हम दोनों के बीच बाटी रखते हुए बोले, लो खाओ, मैं पानी लेकर आता हूँ," और फिर भीतर लौट गए। बाटी में कटहल की भुजिया थी। बाटी में ही सफाई से उसके दो हिस्से कर दिये गये थे। निराला के लौटने तक हम दोनों रूके रहे। यह क्लेश हम दोनों के मन में था कि निराला जी अपने लिए जो भोजन बना रहे थे, वह सारा का सारा उन्होंने हमारे सामने परोस दिया और अब दिन-भर भूखे रहेंगे। लेकिन मैं यह भी जानता था कि हमारा कुछ भी कहना व्यर्थ होगा - निराला का आतिथ्य ऐसा ही जालिम आतिथ्य है।" इस प्रसंग में महादेवी जी का यह कथन अज्ञेय की धारणा को पुष्ट करता है - "अपने संबंध में बेसुध निरालाजी अपने अतिथि की सुविधा के लिए सतर्क प्रहरी हैं। ऐसे युग में आतिथ्य की दृष्टि से निरालाजी में वही पुरातन संस्कार हैं जो इस देश के ग्रामीण किसान में मिलता है।"

निराला के व्यवहार में एक अनिश्चित आक्रामकता को भी इस लेख में रेखांकित किया गया है। उपेक्षा, अभाव एवं दुख की निरंतरता ने निराला के मानसिक संतुलन को डिगा दिया था। अपने लम्बे साहित्यिक जीवन में निराला ने अंग्रेज़ी के वर्चस्व को देखा था। वे जानते थे कि अंग्रेज़ी एक भाषा नहीं, वर्ग है। जब मानसिक विक्षिप्तता का दबाव बढ़ने लगा तो उन्होंने सिद्ध करना चाहा कि वे भाषा के स्तर पर आभिजात्य वर्ग से किसी भी मायने में कम नहीं हैं। अंग्रेज़ी का कोई शब्द सुनते ही वे धारा प्रवाह अंग्रेज़ी बोलने लगते थे। इस स्थिति का ज़िक्र अज्ञेय ने इस संस्मरण में किया है, "निराला ने एकाएक कहा - निराला, कौन निराला? निराला तो मर गया। निराला इज़ डेड। निराला इज़ डेड। अंग्रेज़ी का वाक्य सुनकर मैं डरा कि अब निराला बिल्कुल बहक जाएंगे और अंग्रेज़ी में न जाने क्या-क्या कहेंगे।" **राम की शक्ति-पूजा** लिखने वाला महाकवि औपनिवेशिक भाषा की ग्रंथि से आहत हो - यह विडम्बना निराला की है या उन राजनेताओं और उनकी राजनीति की जिन्होंने भारत की अपनी भाषाओं में लिखने वाले रचनाकारों को हाशिये पर डाल दिया था? निराला का पागलपन, अज्ञेय के अनुसार एक जीनियस का पागलपन था। उसमें आक्रोश, हीनता एवं पराजय-बोध की अनेक स्थितियाँ मिली हुई थीं।

कवि निराला और उनके भाव बोध के मुख्य आयाम

'भवंती' में अज्ञये ने लिखा था - 'प्रसाद पढ़ाये जाएँगे, निराला पढ़े जाएँगे और पंत से सीखा जाएगा।' निराला को सुनना और उन्हें पढ़ना एक प्रीतिकार अनुभव है। अज्ञेय की मान्यता है कि निराला आधुनिक हिंदी कविता में नाद-व्यंजना के सबसे बड़े कवि हैं और उनकी वाणी

कविता के इस गंभीर नाद-सौंदर्य को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती है। क्षितिज पर गूँजती हुई मेघ-ध्वनि के समान निराला की वाणी अद्‌भुत प्रभाव की सृष्टि करती है। उनके वाचन को अज्ञेय ने पहाड़ों से उतरते हुए झरने की कलकल ध्वनि, मूसलाधार वृष्टि, धुँआधार जल प्रपात और वेग से बहती हुई नदी से उपमित किया है। आवेग निराला की कविता की आंतरिक प्रकृति भी है और उनके वाचन की विशेषता भी। निराला गति के रचनाकार हैं, परिवर्तन के प्रतीक उन्हें प्रिय हैं। बादल, वसंत, फूल और बहती हवाएँ निराला की कविता में रूप पाती हैं। निराला जीवन के हर 'बंध' को तोड़ना चाहते हैं, तोड़ते हैं और इस तोड़ने में जो गति और ऊर्जा पैदा होती है वह उनके वाचन में भी छलकती है। निराला के काव्य-वाचन पर टिप्पणी करते हुए अज्ञेय लिखते हैं "प्राचीन काल में काव्य-वाचक जैसे भी रहे हों, मेरे युग में तो निराला जैसा काव्य-वाचक दूसरा नहीं हुआ।"

निराला के भाव बोध की बनावट सुनिर्दिष्ट नहीं है। परस्पर विरोधी स्थितियों को निराला अपने सृजन में समाहित करते हैं। इसलिए उनके भावबोध को अलग-अलग कोणों से देखा और समझा गया है। उनके काव्य में छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इसलिए निराला की सम्पूर्ण रचनात्मकता भी आंदोलन विशेष का अतिक्रमण करती है। लेकिन प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में वैविध्य के बावजूद एक अखण्ड अंतर्धारा होती है जो रचना-परंपरा में उसकी विशिष्टता को रेखांकित करती है। निराला की बहुधर्मी कविताओं की भीतरी प्राणधारा को पहचानने की कोशिश भी अज्ञेय ने इस संस्मरण में की है। अज्ञेय के अनुसार अवसाद निराला की कविताओं की केंद्रीय भावभूमि है। यह अवसाद रूमानी भावुकता का नहीं है। हाड़ तोड़ने वाले दुख की निरंतरता, दुनिया की वास्तविकता का बोध और संधर्ष में निरंतर पराजित होते रहने के कारण निराला के मन में अवसाद की गहरी अनुभूति का उदय होता है। यह अवसाद स्वभावतः वेदना की अनुभूति से उत्पन्न मनःस्थिति का वाचक है। निराला के यहाँ वेदना की प्रकृति एव उसके स्वरूप में अनेक ऐसे तत्व हैं जो छायावादी वेदना की धारा से अलग करते हैं। छायावाद में वेदना एक मूल्य है जो सृजन का उत्स भी है और सार्थकता का आधार भी। वह रचनाकार के जीवन में आँसू बनकर बरसता है और जगत को उर्वर करता है। शायद इसीलिए वहाँ वेदना सौंदर्यात्मक मूल्य का दर्जा प्राप्त कर लेती है। पंत की वेदना एक कैशोर्य भावुकता का कच्चापन है जबकि प्रसाद और महादेवी में वह दर्शन का पुष्ट आधार लेकर आत्म प्रसार की भावना का वाहक बन गयी है। निराला में दुख एक कठोर वास्तविकता के रूप में प्रकट होता है। निराला के यहाँ दुख का स्रोत जीवन है, उसकी परिस्थितियाँ हैं, व्यवस्था है। इसलिए उस दुख को समझने के लिए रचनाकार का मनोमय लोक अपर्याप्त है। निराला में दुख की प्रकृति ऐतिहासिक है, इसलिए वह सामाजिक-आर्थिक संरचना से जुड़ी हुई है। हम कह सकते हैं कि निराला दुख की निर्गुणता के दर्शन को अपर्याप्त मानते हुए उसके सगुण रूप को कविता में ढालते हैं। इसलिए इनके यहाँ दुख विचार रूप नहीं है, एक सच्चाई है। वह सौंदर्य नहीं, विडम्बना है। अपनी सर्वाधिक मार्मिक कविता **सरोज-स्मृति** में निराला दुख को अपने जीवन का सारांश मानते हुए लिखते हैं :

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कुहूँ आज जो नहीं कही।

दुख 'जीवन' की कथा है, भावना का सूक्ष्म अथवा अदृश्य अहसास नहीं। जीवन है तो संघर्ष है, लेकिन यह विशिष्ट संघर्ष है। व्यवस्था के हथियारबंद चक्रव्यूह में एक निहत्थे और ईमानदार मनुष्य का संघर्ष। निराला इस संघर्ष की प्रकृति का संकेत **सरोज-स्मृति** में देते हैं :

मैं खड़ा देखता रहा अपल
वह शरक्षेप वह रण-कौशल।

प्रतिमानवीय शक्तियों की दुर्दान्त क्रूरता में कवि की यह विडंबित सहनशीलता अथवा बेचारगी एक कारूणिक प्रभाव पैदा करती है। इसलिए निराला का दुख रचनात्मक आस्वाद उत्पन्न नहीं

करता। वह एक ठंडी और कठोर शिलाखंड की तरह प्रतीत होता है। निराला केवल दुख की बात नहीं करते, वे दुख के कारणों की चर्चा भी करते हैं। उनके अनुसार दुख के दो आधारभूत कारण हैं - पहला है - निरर्थकता का बोध। 'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था।' यह निरर्थकता दायित्व-निर्वहन की अक्षमता के कारण उत्पन्न होती है। अपने दायित्वों को पूरा न कर पाने का कारण हमेशा व्यक्ति नहीं होता। कई बार परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी होती हैं। अनर्थ-पथ के अस्वीकार की परिणति पराजय में होती है और यह पराजय भी दुख का कारण है। आधुनिक समय में यह अनर्थ **आर्थिक पथ** पर है। सम्पन्नता मूल्यहीनता की सूचक है और निराला के यहाँ जीने के लिए मूल्य के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इसलिए दुख नियति है। उससे मुक्ति संभव नहीं। शायद इसी कारण निराला इस दुख को आत्यन्तिक सच मानते हैं :

'बार-बार हार-हार मैं गया
खोजा जो हार क्षार में नया
उड़ी धूल, तन सारा भर गया
नहीं फूल, जीवन अविकच है
यही सच है।

इस अवसाद अथवा दुख का एक महत्वपूर्ण कारण शाश्वत विश्वासों की टूटन है। आस्था के केंद्र के टूटने से, भरोसे वाली शक्ति का प्रतिमानवीय खेमे में शामिल हो जाने से भी निराला आहत होते हैं :

अन्याय जिधर है उधर शक्ति
कहते छल छल हो गये नयन,
कुछ बूँद पुनः छलके दृग-जल!

अगर निराला के जीवन को देखें तो पाएँगे कि वे निरंतर दुख, मुसीबतों ओर प्रतिकूलताओं का आघात झेलते रहे हैं। भाग्य, दैव ही नहीं बल्कि यह जगत भी उनके खिलाफ़ रहा है। दैवीय विधान और शक्तिशाली, लेकिन रावणी व्यवस्था के दुहरे दबाव में निराला टूटते चले जाते हैं और अपनी इस त्रासद कहानी को बहुत मार्मिक ढंग से इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :

'मुसीबत में कटे हैं दिन
मुसीबत में कटी रातें
लगी हैं चांद सूरज से
निरंतर राहु की घातें।

दुख की इस निरंतरता ने जीवन के रस को सुखा दिया है। छायावाद के अन्य कवियों ने दुख को रसमय बना दिया है, जबकि निराला के यहां दुख जीवन की नदी को मरू में रूपांतरित कर देता है :

स्नेह-निर्झर बह गया है
रेत-ज्यों तन रह गया है।'

निराला के दुख की प्रकृति को व्याख्यायित करते हुए मलयज लिखते हैं कि निराला की कविता दुख को लेकर उड़ने या उसमें खोने के लिए नहीं, बल्कि दुख को याद करने, उससे भीतर ही भीतर मर्माहत होने और बीच-बीच में बाहर कभी व्यंग्य विद्रूप में तो कभी आत्मधिक्कार में चीख पड़ने के लिए है। यह चीख छायावादी दुख की स्व-निर्भर दुनिया से बाहर आने की चीख है।

इस दुख की परिणति 'अकेलेपन' में हुई है। निराला के काव्य में दुख और अकेलेपन की चर्चा परस्परता में हुई है, लेकिन यह निश्चित है कि निराला का अकेलापन अस्तित्ववादी नहीं है।

निरंतर घनीभूत और उदास चेतना के भीतर से अकेलेपन का यह बोध जगा है। उम्र की ढलान से उतरते हुए निराला पाते हैं कि मेला बहुत पीछे छूट गया है। नदी की धार अभी भी उतनी ही तेज है, लेकिन अब कोई नाव नहीं है, कोई माध्यम नहीं है। इस अकेलेपन का एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण साथ जीने वाले साथियों के चरित्र और उनकी राहों में परिवर्तन का आ जाना भी है। शायद निराला हमसफरों की वास्तविकता को पहचान लेते हैं और इस तरह गलत न जीने की अपनी प्रतिबद्धता के कारण जमाने के जुलुस में सबसे पीछे और अकेले बच जाते हैं। अपनी एक प्रार्थना में निराला इस अकेलेपन की हृदयबेधी स्थिति का बयान करते हैं :

'हार गया जीवन-रण
छोड़ गये साथी-जन
एकांकी नैश-क्षण
कंटक-पथ, विगत पाथ।'

यह अकेलापन 'आत्म' का नहीं है, एक सामाजिक मनुष्य का है। यह अकेलापन दुख को अधिक मर्मान्तक बनाता है। यह अकेलापन अंधकार को और अधिक घना बना देता है और राह को अधिक कठिन!

अज्ञेय के अनुसार निराला इस अवसाद जनित वेदना और अकेलेपन का सामना 'भक्ति' से करते हैं। उनकी कविताओं में प्रार्थना की आर्त्त पुकार है, विकराल लहरों से जूझते हुए तैराक की थकी हुई सांसों की अनकही व्यथा है, द्रवित कर देने वाली करूणा है। मनुष्यों की इस दुनिया में आदमी कितना अकेला और असहाय है - इस विडंबना की व्यंजना भी निराला के भक्ति-गीतों में है। रामकृष्ण परमहंस की परंपरा से प्रभावित होने के कारण निराला बार-बार माँ को याद करते हैं। इस धरती और अपने जीवन पर गहराते अंधकार की सूचना देते हैं और नरक के बढ़ते हुए दुर्दान्त प्रभाव से मनुष्य को मुक्त करने की प्रार्थना करते हैं :

माँ अपने आलोक निखारो
नर को नरक त्रास से वारो।'

निराला के भक्तिपरक गीतों में नितांत निजता के साथ सम्पूर्ण मनुष्य के संकटों एव पीड़ाओं का बयान भी है। निजी आत्मनिवेदनों में कवि का स्वर दीनता और विवशता के उस स्तर तक पहुँच गया है जहाँ हिंदी कविता के महान रचनाकार तुलसीदास थे। शारीरिक असमर्थता, कठिन-यात्रा और गहराता अँधेरा! इन तमाम प्रतिकूलताओं में शरण के अतिरिक्त दूसरा विकल्प ही क्या है!

'भग्न तन, रुग्ण मन
जीवन विषण्ण बन!
चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दोषरण।'

यह दैन्य आर्त्त पुकार बहुत बेधक है। मानवीय समाज से सहायता की कोई उम्मीद नहीं है। रास्ता सूझता नहीं और चाल धीमी होती जा रही है। कैसे पूरा होगा सफ़र? 'परिमल' की सेवा कविता में निराला ने लिखा था :

डोलती नाव, प्रखर है धार
सँभालों जीवन खेवन हार!

'गीत-गुँज' तक पहुँचते-पहुँचते यह संकट और अधिक घना हो गया है, जीवन पतझड़ के उपवन में बदल गया है :

दुखता रहता है अब जीवन,
जैसे पतझड़ का वन उपवन!

लेकिन अज्ञेय यह नहीं मानते कि निराला की भक्ति मध्यकाल के भक्त कवियों की तरह है। मध्यकाल में भक्ति एक मूल्य है। सामंतवाद की विलासिता एवं धार्मिक पाखंडों के खिलाफ यह सार्थकता एवं अनुभूति की प्रक्रिया है। निराला की भक्ति में एक पराजित मनुष्य की व्यथा है। इसलिए मध्यकालीन भक्ति की प्रकृति आनंदमूलक है जबकि निराला के यहाँ वह अवसादमूलक है।

निराला का निरालापन जीवन की इन परिस्थितियों एवं पीड़ाओं के अतिक्रमण में है। निराला द्वंद्व के कवि हैं। जितना गहरा अंधकार है, मशाल की रोशनी उतनी ही प्रखर है। वे दुख और मृत्यु का सामना स्मृति की मधुमयता और सौंदर्य से करते हैं। उनकी महत्वपूर्ण कविता **राम की शक्ति-पूजा** में राम पराजय-बोध के विषादमय क्षणों में सीता के प्रथम स्नेह को याद करते हैं। **सरोज-स्मृति** में वे मृत्यु को बार-बार सौंदर्य की अप्रतिम अनुभूति से विचलित करते हैं। अपनी लम्बी कविताओं में ही नहीं, गीतों मं भी निराला जीवन की पक्षधरता में सृजन का उपयोग करते हैं। वे पतझर के खिलाफ़ स्वयं को **वसंत का अग्रदूत** होने की घोषणा करते हैं। वस्ततः निराला दुख या अवसाद को झुठलाते नहीं। वे इनका सामना करते हैं और इस मुठभेड़ में कभी दुख को विजय मिलती है और कभी सौंदर्य को, आस्था को, आनंद को विजय मिलती है। निराला के गीतों में वसंत और वर्षा की अधिकता का कारण सौंदर्य और सृजन की अपराजेय आकांक्षा है। इसलिए निराला की आँखें दुख के साथ जीवन का दूसरा चेहरा भी देख पाती हैं :

सखि वसंत आया
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया।

यहाँ ध्यान रखने की बात है कि यह वसंत फूलों की ऋतु है और निराला फूल को संघर्ष की परिणति मानते हैं। इसलिए इस वसंत का, इन फूलों का एक छोर पतझड़ की वास्तविकता से भी बँधा हुआ है। बादल निराला को बहुत प्रिय हैं। वे बादलों को अपनी आँखों का सपना कहते हैं:

'बादल छाये
ये मेरे अपने सपने
आँखों से निकले, मँडलाये।'

और निराला का सपना है कि यह धरती, यह जीव रसमय हो जाय। वे बादल से आग्रह भी करते हैं :

अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस बरस रसधार।'

सामान्यतः **राम की शक्ति पूजा** एवं **सरोज-स्मृति** को निराला की प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में देखा जाता है। प्रस्तुत लेख में अज्ञेय ने **'तुलसीदास'** को निराला की अद्वितीय रचनात्मक उपलब्धि माना है। अज्ञेय **'तुलसीदास'** को इसलिए सर्वाधिक महत्व देते हैं क्योंकि उसमें सांस्कृतिक चेतना सर्जनात्मक रूप में अवतरित हुई है। अज्ञेय काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हैं। इस रूप में कविता किसी देश की ऐतिहासिक अस्मिता के साथ-साथ अनागत की स्वप्न-गाथा भी होती है। स्मृति और स्वप्न के किनारों के बीच प्रवाहित [illegible] कविता का मूल विषय है और निराला की **तुलसीदास** इस विषय की साथ न्याय करती है।

जागरण और सृजन की अपूर्व ऊर्जा से आवेशित यह कविता समूची हिंदी रचनाशीलता की कालजयी उपलब्धि है।

नयी पीढ़ी के प्रति निराला के मन में स्नेह का भाव है। वे नयी पीढ़ी की रचनात्मक चुनौतियों को समझते हैं। नयी कविता बोलचाल की भाषा के स्वर पर बल देती है जबकि छायावाद में संगीत के स्वर पर बल था। इस बारीक अंतर का बोध निराला को है। निराला नयी पीढ़ी को कितनी गहराई और सजगता से पढ़ते हैं, इसका आभास उनके निम्नांकित कथन से होता है, "तुम जो लिखते हो, वह मैंने पढ़ा है... तुम क्या करना चाहते हो, वह हम समझते हैं। स्वर की बात तो हम भी सोचते हैं। लेकिन असल में हमारे सामने संगीत का स्वर रहता था और तुम्हारे सामने बोलचाल की भाषा का स्वर रहता है।" अपनी इसी उदारता के कारण निराला प्रयोगशील रह सके और परवर्ती रचना-पीढ़ियों के प्रतिमान भी बन पाये।

21.7 'वसंत का अग्रदूत' का संरचनात्मक वैशिष्ट्य

वसंत का अग्रदूत की संरचना पर विचार करते हुए सबसे पहले हम स्वयं को इस सवाल के सामने खड़ा पाते हैं कि यह पूरी तरह संस्मरण है या नहीं? सस्मरण के केंद्र में व्यक्ति होता है, इसलिए रचना विश्लेषण उसकी परिधि में नहीं आता। सृजन पर मूल्य निर्णय देने का काम आलोचक करता है, संस्मरणकार नहीं। लेकिन इस लेख में निराला की कविताओं पर भी विस्तार से टिप्पणी की गई है। ऐसी स्थिति में यह लेख सिर्फ़ संस्मरण की परिधि में नहीं आता। स्मृति और समीक्षा के गठजोड़ से इस संस्मरण लेख का निर्माण किया गया है।

इस लेख के विन्यास में नाटकीय-विधान का प्रयोग किया गया है। संवादों का प्राचुर्य है और उनमें नाटकीय उतार चढ़ाव की गति को ध्यान में रखा है। वस्तुतः इसकी भाषा संवादधर्मी है और विन्यास में विवरण या वर्णन के स्थान पर दृश्यात्मकता पर अधिक बल है। संवाद की एक बनागी द्रष्टव्य है - "बीच में उग्रजी ने एकाएक गिलास की ओर इशारा करते हुए पूछा, "लोगे?" मैंने सिर हिला दिया तो फिर कुछ चिढ़ाते हुए बोले, "पानी नहीं है, शराब है शराब।" संवादों में पात्रों की मनःस्थितियों को भी ध्यान में रख गया है। नशे के सूरूर में निराला की भाषा का एक रूप द्रष्टव्य है :

"निराला जी ने उसी आज्ञापना स्वर में कहा, देखो, दो घंटे तक यह सवाल हमसे मत पूछना। जहाँ तुम चाहो, लेते चलो। अच्छी सड़कों पर सैर करेंगे... पैसे पूरे मिलेंगे।...।"

इस लेख की रचना की तीसरी खासियत है - हास्य और विनोद का अद्‌भुत प्रयोग। यहाँ शिवमंगल सिंह सुमन कवि रूप में नहीं, विदूषक के रूप में दिखायी देते हैं। अतिरिक्त उत्सुकता, बचकानी इतराहट और हास्यास्पद चेष्टाओं के चित्रण के द्वारा अज्ञेय इस गंभीर संस्मरण की पठनीयता की हिफाज़त कर सके हैं। हास्य-विनोद के कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं - "(i) लेकिन सुमन जी और चुप रहना? (ii) मैंने पीठ में चिकोटी काट कर सुमन को चुप कराया और अचरज यह कि वे चुप भी हो गये! (iii) नाम सुमन रख लेने से क्या होता है - अगर सवेरे-सवेरे सहज खिल भी न सकें।"

इस संस्मरण में स्मृति, विचार एवं आलोचना का मिश्रण हो गया है। अज्ञेय इस रचना के माध्यम से अपने एक वरिष्ठ कवि को याद करते हैं, साथ ही उनकी रचनाओं के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कवि की रचनात्मक प्रवृत्ति की विवेचना भी प्रस्तुत करते हैं। अज्ञेय के रचना-कर्म में कलाकार की सजगता है, इसलिए प्रस्तुत लेख भी संरचनात्मक कसावट से अनुशासित है।

21.8 सारांश

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास को जिन दो रचनाकारों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, वे है - भारतेंदु हरिश्चंद्र और निराला। भारतेंदु ने नयी सृजनशीलता की दिशाओं का संधान किया तो निराला ने छंद की मुक्ति को कविता की मुक्ति और कविता की मुक्ति को अंततः मनुष्य की मुक्ति से जोड़ दिया। वे अपनी रचनाशीलता में निरंतर प्रयोगशील रहे और वादों के संकीर्ण घेरे को तोड़ते रहे। इसलिए वे परवर्ती पीढ़ी की प्रेरणा और प्रतिमान बने। उनके व्यक्तित्व में भी बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ थीं कि वे सहज ही आकर्षण का केंद्र बने रह सके और उन पर अनेक समकालीन और परवर्ती पीढ़ी के लेखकों ने लिखा और उन्हें याद किया। प्रस्तुत संस्मरण **वसंत का अग्रदूत** इसी श्रृंखला की एक कड़ी है।

एक विधा के रूप में संस्मरण का आविर्भाव आधुनिक काल में हुआ। यह विधा अपनी प्रकृति में सम्मिश्र है। निबंध, कहानी, जीवनी, आत्मकथा और रेखाचित्र के अनेक तत्व इसमें मिलते हैं। लेकिन आज हिंदी में इसका विपुल साहित्य है और इसकी एक समृद्ध परंपरा भी बन गई है। अतः अकाल्पनिक गद्य-लेखन में संस्मरण ने अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। संस्मरण लेखन की परंपरा का सूत्रपात, यद्यपि बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हो चुका था, लेकिन पाँचवे दशक तक आते-आते उसे उसकी स्वतंत्र पहचान मिली। हिंदी में साहित्यिक एवं गैर-साहित्यिक संस्मरणों की भरमार है। प्रस्तुत इकाई में साहित्यिक संस्मरणों पर ही ध्यान दिया गया है।

संस्मरण स्मृति से साक्षात्कार है। वह समय में लौटना नहीं है, बल्कि गुजरे समय को जीवन की वर्तमानता से जोड़ने का माध्यम है। इस रूप में वह इकहरे वर्तमान की रिक्तता को भरने वाला सशक्त रचना माध्यम है। व**संत का अग्रदूत** में अज्ञेय ने निराला के व्यक्ति रूप और कवि रूप - दोनों पर विचार किया है और इन दोनों रूपों की आंतरिक संगति को भी पहचानने की कोशिश की है। निराला सबसे पहले एक संवेदनशील एवं करूणावान मनुष्य हैं। व्यक्तित्व की बाहरी अनगढ़ता के भीतर एक अंतःसलिला है जो उनकी मनुष्यता और रचना में निरंतर दिखाई देती है। वे एक ही साथ आधुनिक भी हैं और प्राचीन भी। परंपरा को आधुनिक अर्थवत्ता से जोड़कर वे उसका विकास करते हैं। इसलिए उनके व्यक्तित्व में एक तरफ किसानी संस्कार की प्रबलता है तो दूसरी तरफ द्रष्टा कवि का सर्जनात्मक वर्तमान बोध भी है। निराला नयी पीढ़ी के प्रति सहृदय हैं और उसकी चिंताओं एवं रचनात्मक चुनौतियों से अवगत हैं। यह विशेषता ही उन्हें परवर्ती पीढ़ी के लिए समादरणीय बनाती है।

अज्ञेय के अनुसार निराला के भावबोध का मूल आधार है अवसाद। यह अवसाद मानसिक अथवा रोमांटिक भाव-बोध नहीं है। इस अवसाद की वस्तुगत परिस्थितियाँ हैं। यानी यह अवसाद पूरी तरह मानवीय है या व्यवस्था की मार से पैदा हुआ है। यह अवसाद अकेलेपन की सृष्टि करता है। अकेलेपन की निस्सहायता से टूट कर निराला-भक्ति की ओर मुड़ते हैं। लेकिन वहाँ भी उन्हें शांति नहीं मिलती। निराला के भक्ति गीतों में भी आत्मा का उल्लास नहीं है। ये गीत उनके दुखों-संघर्षों एवं पराजयों का इतिहास हैं। अतः इनकी भक्ति आध्यात्मिक नहीं, मनोवैज्ञानिक है। लेकिन जैसा कहा गया है कि निराला इकहरी चेतना के कवि नहीं हैं। उनमें संश्लिष्टता है और अंतर्विरोध हैं। आजीवन संघर्ष एवं अभाव के बावजूद जीवन के प्रति उनकी आस्था में कोई दरार नहीं है। वे मृत्युधर्मी स्थितियों का सामना जीवन से करते हैं। बादल, फूल, सौंदर्य, आकांक्षा आदि के द्वारा वे मनुष्य की अपराजेयता में अपनी आस्था व्यक्त करते हैं। जिस संसार में वे निरंतर टूटते रहे, छिजते रहे उस संसार से मुक्ति की कामना निराला नहीं करते। अपनी अंतिम कविता में वे यही आकांक्षा करते हैं :

'पुनः सवेरा, एक और फेरा हो जी का।'

बार-बार जीवन में लौटने की यह आकांक्षा निराला की मानवीय आस्था को तो प्रमाणित करती हैं, वह एक कालजयी रचनाकार की अपराजेय सृजनेच्छा को भी प्रमाणित करती है। निराला पर अज्ञेय की यह टिप्पणी अत्यंत सार्थक है - "इस अशेष छवि पर कवि ने दान कभी नहीं माँगा, पर गीत विश्व को दिया - गीत दिया, पर उसके लिए भी रूका नहीं, बाँटते-बाँटते ही तिरोधान हो गया :

'मैं अलक्षित हूँ, यह कवि कह गया है।"

वसंत का अग्रदूत की संरचना में संस्मरण और समीक्षा का वैशिष्ट्य है। उसमें एक कवि की दूसरे अग्रज कवि के प्रति गहरी श्रद्धा की अभिव्यक्ति भी है। इसी के अनुरूप इस संस्मरण की भाषा में आत्मीयता और रचनाशीलता का गहरा प्रभाव है।

अभ्यास

1. संस्मरण का आशय स्पष्ट करते हुए बताइए कि **वंसत का अग्रदूत** संस्मरण की शर्तों का किस सीमा तक निर्वाह करता है?
2. अज्ञेय ने 'अवसाद' को निराला के भावबोध का मुख्य आधार माना है, फिर भी उन्हें **वसंत का अग्रदूत** कहा है। इस अंतर्विरोध के औचित्य पर प्रकाश डालिए।
3. निराला की वेदना किन बिंदुओं पर छायावादी वेदनानुभूति से अलग है? इस संस्मरण के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

इकाई 22 जीवनी : कलम का सिपाही

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 जीवनी का स्वरूप
22.3 जीवनी साहित्य : परंपरा और विकास
22.4 कलम **का सिपाही** : जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि
22.5 **कलम का सिपाही** : वस्तु और संवेदना
22.6 **कलम का सिपाही** : शिल्पगत वैशिष्ट्य
22.7 **कलम का सिपाही** का मूल्यांकन
22.8 सारांश

22.0 उद्देश्य

यह इकाई एम.ए.(हिंदी) के बीज पाठ्यक्रम- 4 के लिए अमृतराय द्वारा लिखित प्रेमचंद की जीवनी **कलम का सिपाही** पर केंद्रित है। इस खंड में अब तक आप दो इकाइयाँ पढ़ चुके हैं। इकाई 20 में आपने महादेवी वर्मा के रेखाचित्र **ठकुरी बाबा** के बारे में अध्ययन किया था और इकाई 21 में आपने अज्ञेय द्वारा निराला पर लिखे संस्मरण **वसंत का अग्रदूत** के बारे में पढ़ा था। अब आप जीवनी का अध्ययन करने जा रहे हैं।

यह इकाई छह भागों में विभक्त है। पहला भाग जीवनी के स्वरूप निर्धारण पर है। जीवनी विधा को किस तरह परिभाषित किया गया और जीवनी लेखन में कितने तत्वों का योग है - यह भाग इन्हीं तत्वों को रेखांकित करता है। जीवनी आधुनिक युग की देन होते हुए भी उसके प्रारंभिक बीज आदिकालीन साहित्य से ही मिलने लगते हैं। दूसरा भाग जीवनी की परंपरा और विकास को उद्घाटित करता है। तीसरे भाग में **कलम का सिपाही** जीवनी की विशेषताओं का परिचय दिया गया है। चौथा भाग आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित अंश के संवेदनात्मक स्तरों पर केंद्रित है और पाँचवे भाग में उसके शिल्पगत वैशिष्ट्य को उभारा गया है। छठे भाग में प्रेमचंद पर लिखित अन्य जीवनियों का उल्लेख करते हुए इस कृति के वैशिष्ट्य का मूल्यांकन किया गया है। इकाई के अंत में इकाई का सारांश और अभ्यास दिए गए हैं। इकाई का अध्ययन करने से आपको सामान्य तौर पर जीवनी के लेखन और विशेष तौर पर **कलम का सिपाही** को समझने में मदद मिलेगी।

22.1 प्रस्तावना

इस इकाई का संबंध प्रेमचंद की जीवनी से है। यह जीवनी स्वयं प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने लिखी है। प्रेमचंद का जन्म 1880 ई. में हुआ था और 1936 ई. में उनका देहावसान हो गया था। अमृतराय उस समय छोटे थे। बाद में उन्होंने प्रेमचंद से संबंधित विभिन्न सामग्री एकत्र की, उनके संपर्क में आने वाले सगे-संबंधियों, दोस्तों और परिचितों से मुलाकात की और खुद प्रेमचंद के साहित्य का सतर्कतापूर्वक अध्ययन किया। इस आधार सामग्री का इस्तेमाल कर अमृतराय ने **कलम का सिपाही** नाम से जो जीवनी लिखी, वह प्रेमचंद की सबसे प्रामाणिक, महत्वपूर्ण और पठनीय जीवनी है। अमृतराय प्रेमचंद के पुत्र थे। अपने पिता की जीवनी लिखना किसी भी पुत्र के लिए आसान नहीं होता। तब तो और भी मुश्किल होता है, जब पिता प्रेमचंद जैसा महान कथाकार हो। अमृतराय के बारे में यहाँ यह जानना जरूरी है कि वे स्वयं भी रचनाकार थे। कहानियों, उपन्यासों के साथ-साथ उन्होंने कई सालों तक 'हंस'

पत्रिका का संपादन भी किया। वे महान लेखक के पुत्र ही नहीं थे। स्वयं उन्हें एक रचनाकार का हृदय और विचारक की दृष्टि मिली थी।

लेकिन महान् से महान् रचनाकार भी अंततः मनुष्य होता है। उसमें भी मनुष्य की स्वाभाविक कमज़ोरियाँ, इच्छाएँ और सीमाएँ होती हैं। लेक़िन वह इन मानवीय स्थितियों से संघर्ष करता हुआ, समाज को कुछ ऐसा दे जाता है जो अपने समय के लिए ही नहीं आगे आने वाली कई-कई पीढ़ियों के लिए मूल्यवान् निधि होता है। उसकी इस कालजयी देन के वास्तविक महत्व को हम तभी समझ सकते हैं जब हम उस रचनाकार के जीवन संघर्ष के संदर्भ को समझने का प्रयास करें।

जीवनी का लेखन एक तरह से परकाया प्रवेश है। जीवनीकार जिस व्यक्ति के जीवन का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है, उसे वह तभी प्रभावी रूप दे सकता है जब वह उस व्यक्ति के जीवन के अंतर्विरोधों और मर्म को समझ सके। वह उसके द्वारा किए कार्यों के महत्व को पहचान सके। प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को जिस रूप में समृद्ध किया है, वह युगांतरकारी कार्य है। लेकिन वह सिर्फ कथाकार ही नहीं थे। वे पत्रकार भी थे। 'हंस' और 'जागरण' के द्वारा उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन और नवजागरण को प्रगतिशील और जनोन्मुखी दिशा प्रदान की थी। लेकिन इन पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित करने के लिए उन्हें लगातार मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। मसिजीवी होने के कारण आय का अन्य कोई साधन न होते हुए भी पत्रों के प्रकाशन उनकी गहरी प्रतिबद्धता का सूचक था। **कलम का सिपाही** का जो अंश आपने पढ़ा है, उसका संबंध उनके पत्रकार के रूप में संघर्ष से संबंधित है। प्रेमचंद ने कितनी मुश्किलों के बावजूद 'हंस' और 'जागरण' का प्रकाशन जारी रखा - यह अपने में एक मिसाल है।

प्रेमचंद की जीवनी के उतने ही अंश को पढ़ना पर्याप्त नहीं है जो आपके पाठ्यक्रम में है। हमारा सुझाव है कि आप **कलम का सिपाही** का आद्योपांत अध्ययन करें। यही नहीं, आपको प्रेमचंद से संबंधित अन्य पुस्तकों और उनके साहित्य को जरूर पढ़ना चाहिए। इस इकाई में आपको जीवनी साहित्य के स्वरूप और महत्व, **कलम का सिपाही** की विशेषताएँ और अन्य जीवनी-लेखन से उसकी तुलना को जानने का अवसर मिलेगा। लेकिन इतना अध्ययन ही आपके लिए पर्याप्त नहीं है। आप स्वयं पढ़कर जीवनी की विशेषताओं को समझने का प्रयास करें। इसके साथ ही आप यह भी पहचानने का प्रयास करें कि जीवनी और आत्मकथा, जीवनी और संस्मरण तथा जीवनी और रेखाचित्र में क्या बुनियादी अंतर है। आपने **वसंत का अग्रदूत** का अध्ययन किया है, क्या वह निराला की जीवनी है? क्या **ठक्कुरी बाबा** की जीवनी कहा जा सकता है? इन रचनाओं में ही इनकी विशिष्टताएँ निहित हैं जिनको जानना आपके लिए मुश्किल नहीं होगा।

22.2 जीवनी का स्वरूप

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में जिन विधाओं का विशेष योगदान रहा है, 'जीवनी' का उनमें महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य-साहित्य और जीवन दोनों का केंद्र है। जीवनी उसके जीवन और व्यक्तित्व को समग्रतः अभिव्यक्त करने वाली साहित्यिक विधा है। जीवनी के विषय में 'हिंदी साहित्य कोश' में कहा गया है - 'किसी व्यक्ति-विशेष के जीवन वृत्तांत को जीवनी कहते हैं।' अर्थात् जीवनी में व्यक्ति-विशेष के जीवन को उसकी संपूर्णता एवं व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। जीवन का यह ब्यौरा स्व-रचित न होकर किसी अन्य द्वारा तटस्थ तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण के आधार पर रचा जाता है। इस दृष्टि से यह आत्मकथा के विपरीत 'परकथा' है।

जीवनी का लेखक अपने चरित नायक के जीवनवृत्त को साकार करने के लिए व्यक्ति-विशेष के जीवन की घटनाओं पर बहुत बल देता है लेकिन घटनाओं का परिगणन मात्र जीवनी नहीं है; उसमें घटनाएँ और चरित्र, युग और पृष्ठभूमि - सबका समंजन रहता है। अतः जीवनी का रचना विधान लेखक से विशिष्ट रचना सामर्थ्य की भी अपेक्षा रखता है। कुल मिलाकर, जीवनी व्यक्ति-विशेष के जीवन का ऐसा चित्र है जहाँ उसके जीवनगत तथ्यों और चरित्र की विशेषताओं को ऐसी कलात्मकता के साथ विन्यस्त किया जाता है कि वह शब्द चित्र सजीव हो उठता है। बाबू गुलाबराय ने जीवनी को परिभाषित करते हुए इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है - 'जीवनी लेखक अपने चरित्रनायक के अंतर-बाह्य स्वरूप का चित्रण कलात्मक ढंग से करता है। इस चित्रण में वह अनुपात और शालीनता का पूर्ण ध्यान रखता हुआ सहृदयता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता के साथ अपने चरित्रनायक के गुण दोषमय सजीव व्यक्तित्व का एक आकर्षक शैली में उद्‌घाटन करता है।' (गुलाबराय, काव्य के रूप,)

जीवनी के केंद्र में चरित नायक और उसका कर्तृत्व रहता है। इसलिए जब जीवनी के चरितनायक का चयन किया जाता है तब जीवनीकार के मन में यही तत्व सर्वप्रमुख रहता है कि चरितनायक का चरित्र प्रेरक और आकर्षक हो अर्थात् मनुष्य की मानवीयता, कर्मठता और सदाशयता को प्रकाशित करने वाला व्यक्तित्व ही किसी भी जीवनी का केंद्र-बिंदु बनता है। किसी समय यह धारणा महत्वपूर्ण थी कि जीवनी का चरित नायक ऐसा विख्यात व्यक्ति ही हो सकता था जिसका चरित्र महिमा-मंडित रहा हो और जिसके प्रति जीवनीकार की श्रद्धा हो। लेकिन आधुनिक युग में यह दृष्टि बदली है और यह अनुभव किया गया है कि जीवनी व्यक्ति-केंद्रित विधा होते हुए भी समूचे युग और उसकी पृष्ठभूमि को प्रति-ध्वनित करने वाली विधा है। इसीलिए अति-सामान्य दिखने वाला साधारण-जन भी जीवनी का चरित-नायक हो सकता है। प्रायः ऐसे व्यक्ति की जीवनी लिखते हुए लेखक का उद्देश्य समाज और व्यवस्था तथा उसमें निहित मानव मूल्यों की स्थिति को उजागर करना रहता है।

जीवनी लेखन में जितना बल चरित-नायक के चुनाव पर दिया जाता है उतनी ही महत्ता उसके सजीव व्यक्तित्वांकन की भी है। जीवनी का नायक कोई कल्पना निर्मित पात्र नहीं है। इसलिए उसके चरित्र का निर्माण भी उसके जीवन तथ्यों एवं सत्य घटनाओं के आधार पर किया जाता है। नायक का जीवन चरित्र सत्य के जितना निकट होगा उसकी जीवनी उतनी ही प्रामाणिक एवं विश्वसनीय होगी लेकिन इन सबके बावजूद जीवनी चरित नायक के जीवन की घटनाओं का ब्यौरा भर नहीं है। बाबू गुलाबराय का मत है :

'जीवन की घटनाओं के विवरण का नाम जीवनी नहीं है। लेखक जहाँ नायक के जीवन में छिपे उसके विकास को, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को, उसकी मुख्य जीवनधारा को खोलकर पाठकों के सामने रख देता है वहाँ जीवनी लेखन-कला सार्थक होती है। ऊपर से मनुष्य के दिखाई पड़ने वाले रूप को दिखाकर ही जीवनी लेखन कला संतुष्ट नहीं होती, वह उस आवरण को भेदकर अंतःस्वरूप और आंतरिक सत्य को प्रत्यक्ष करती है।'

इस दृष्टि से जीवनी को चरित-नायक के जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी कहा गया है जहाँ लेखक अपने चरितनायक के गुण-दोषमय चरित्र को एक तटस्थ एवं ईमानदार दृष्टि से पहचानकर उसका सहृदयता, स्वतंत्रता एवं निष्पक्षतापूर्ण अंकन करता है। जीवनी लेखक अपने चरितनायक की जीवन यात्रा का सहयात्री बनता है। वह अपने चरित नायक को सतह की वास्तविकताओं से नहीं समझता, उसके जीवन की सच्चाइयों में गहरे पैठकर जीवन के उतार-चढ़ावों में सामाजिक संचरण करता हुआ अपने नायक के जीवन चरित्र को परत-दर-परत उघाड़कर प्रस्तुत करता है। न तो अतिरिक्त श्रद्धावश वह उसे केवल गुणों का पुतला बनाकर प्रस्तुत करता है न ही दुर्बलताओं का पुंज। जीवनी की सार्थकता इसी बात में निहित है कि उसके चरितनायक का स्वरूप एक जीते-जागते इंसान की तरह सप्राण हो।

जीवनी लेखन चरित-नायक के जीवन-तथ्यों पर आधारित होता है। उसे प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने के लिए लेखक को सामग्री संकलन के लिए भी भगीरथ प्रयास करना पड़ता है। एक शोधकर्ता की भांति वह विभिन्न सामग्री स्रोतों का संकलन एवं अध्ययन-मनन करता है। यदि चरित-नायक द्वारा आत्मकथा लिखी गई हो तो वह जीवनी लेखक के लिए भी प्रमुख स्रोत बनती है। इसके साथ-साथ स्वयं नायक द्वारा लिखे गए संस्मरण या अन्य लोगों द्वारा नायक के विषय में लिखे संस्मरण, नायक की डायरी, पत्र, चरित-नायक द्वारा लिखा गया सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक साहित्य उसकी वक्तृताएँ, भेंटवार्ताएँ, पेंटिंग, फोटोग्राफ इत्यादि विभिन्न सामग्री जिसका संबध किसी न किसी रूप में चरित-नायक से हो - वह सब जीवनीकार के लिए महत्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त, वह स्वयं उन लोगों से मिलता है जो चरित-नायक के घनिष्ठ रहे हों। अपने चरित-नायक के युग और पृष्ठभूमि को समझने के लिए लेखक तत्कालीन समाचार-पत्रों, इतिहास-ग्रंथों आदि में बिखरी सामग्री का भी संचयन कर, उसपर चिंतन करता है और तभी एक सफल जीवनी का निर्माण संभव होता है।

तथ्य-संकलन की इतनी महत्ता के बावजूद अनुभूति और कल्पना के अभाव में जीवनी साहित्य विधा न होकर निष्प्राण इतिहास-ग्रंथ के समान हो जाती है। यदि जीवन-तथ्य जीवनी का कलेवर है तो अनुभूति और कल्पना उसमें प्राण-संचार करने वाला तत्व है लेकिन कल्पना का प्रयोग केवल कलात्मक विन्यास के सहायक तत्व के रूप में ही किया जाता है।

जीवनीकार का लक्ष्य व्यक्ति को उसके संपूर्ण संदर्भों में प्रस्तुत करने का रहता है, इसलिए व्यक्ति के भावलोक एवं विचार-क्षेत्र के साथ-साथ उसका बहिर्जगत भी जीवनीकार के लिए महत्वपूर्ण है। वस्तुतः व्यक्ति को गढ़ने में उसकी परिस्थितियों और सामाजिक शक्तियों का अद्वितीय योगदान हैं। जीवनीकार के लिए व्यक्ति-जीवन की घटनाएँ मात्र सत्य नहीं है, घटनाओं की पृष्ठभूमि, उनको निर्धारित करने वाले प्रेरणा स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस दृष्टि से लेखक तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को खंगालता है और उन सक्रिय शक्तियों की पहचान करता है जो उसके चरित-नायक के जीवन का नियमन करती रहीं या फिर चरित-नायक ने जिस रूप में सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन लाने में अपनी भूमिका निभाई।

इस प्रकार, जीवनी एक गुम्फित विधा है जिसके केंद्र में व्यक्ति और उसका अंतर बाह्य जगत है। दूसरी ओर, उस व्यक्ति के माध्यम से ही पूरा युग और पृष्ठभूमि भी ध्वनित होती है। कुल मिलाकर, जीवनी लेखन एक चुनौतीपूर्ण विधा है जो लेखक से विशिष्ट रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा रखती है।

22.3 जीवनी साहित्य : परंपरा और विकास

आधुनिक गद्य विधा के रूप में जीवनी निश्चित रूप से आधुनिक युग की ही देन है। यों परंपरागत दृष्टि से देखा जाए तो साहित्य के आरंभिक युग से ही जीवन-चरितों के सृजन की परंपरा उपलब्ध रही है। आदिकाल के चरित-काव्य काव्य-नायक के जीवन-चरित की ही कहानी हुआ करते थे, किंतु वहाँ तथ्यगत सच्चाई की अपेक्षा कवि-कल्पना की प्रधानता रहती थी। आदिकालीन वीर काव्य राजा-महाराजाओं के शौर्य और ऐश्वर्य की ऐसी गाथाएँ थीं जिनमें वीरता और शृंगारिकता के अतिरंजित चित्र उपलब्ध होते थे। भक्तिकाल में भी भक्तों के जीवनादर्शों की प्रस्तुति के लिए चरित लेखन की परंपरा को विशेष प्रोत्साहन मिला। एक ओर जहाँ संतों के जीवन चरित पर आधारित 'परचई' साहित्य लिखा गया जैसे 'कबीर जी की परचई', 'नामदेव जी की परचई', 'रेदास जी की परचई', 'मलूकदास जी की परचई' आदि। दूसरी ओर नाभादास कृत 'भक्तमाल', स्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्टसखान की वार्ता' जैसे ग्रंथ जनता के बीच विशेष रूप से विख्यात रहे। इन सभी रचनाओं में तथ्यात्मकता का अभाव रहा। भक्तों के प्रति आदर

और प्रशंसा की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से रचे गए ये ग्रंथ कहीं-कहीं अलौकिकता का पुट लिए हुए हैं।

भारतेंदु युग में ही अन्य गद्य विधाओं की भांति जीवनी के भी सृजन और विकास का पथ प्रशस्त हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में भारतेंदु युग में मुख्यतः संत महात्माओं, राजा-महाराजाओं, विदेशी शासकों, समकालीन राष्ट्रीय नेताओं, देशभक्त क्रांतिकारी युवाओं एवं साहित्यकारों के जीवन चरित लिखे गए। स्वयं भारतेंदु ने 'चरितावली' (1871-1889) की रचना की जिसमें अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों के संक्षिप्त जीवन चरित संकलित हैं। 'पंच पवित्रात्मा' (1884) शीर्षक से उन्होंने मुस्लिम धमाचार्यों की भी संक्षिप्त जीवनियाँ लिखीं। इस युग की अधिकांश जीवनियों में किंवदंतियों को आधार बनाया गया। प्रायः वर्णन और विवरण ही प्रधान रहे। फिर भी भारतेंदु, मुंशी देवी प्रसाद और कार्तिक प्रसाद खत्री ने अपने चरित नायक की विशिष्टताओं को उभारने का प्रयास किया। इनके द्वारा रचित जीवन चरितों में प्रामाणिकता और रोचकता के गुणों का भी निर्वाह हुआ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवन चरित संबंधी पाँच पुस्तकों की रचना की जिनमें 'प्राचीन पंडित और कवि', 'सुकवि संकीर्तन' तथा 'चरित चर्चा' आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद के जीवन पर केंद्रित शिवरानी देवी की रचना 'प्रेमचंद : घर में' (1944) संस्मरणात्मक शैली में लिखी गई जीवनी है।

इस प्रकार, स्वाधीनता-पूर्व युग में यद्यपि जीवनी के कोई स्थिर मानदंड नहीं थे। एक विकासात्मक विधा के रूप में उसमें अनेक तत्वों और भाषागत विभिन्न शैलियों का प्रयोग होता रहा। वस्तुपरक तटस्थता की अपेक्षा श्रद्धापरक दृष्टि ही प्रधान रही लेकिन इन सबके बावजूद विषयगत वैविध्य इस युग के जीवनी लेखन की प्रधान प्रवृत्ति रहा। अपने चरित नायक के चुनाव में लेखकों ने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया।

स्वातंत्र्योत्तर युग जीवनी विधा का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। विषय-वस्तु और अभिव्यक्ति, दोनों दृष्टियों से इस युग में विकास की नई संभावनाएँ सामने आईं। संक्षिप्त जीवन-चरितों के सृजन की अपेक्षा लेखकों की प्रवृत्ति व्यक्ति को उसके व्यापक युग संदर्भों से जोड़कर देखने की रही। स्वातंत्र्योत्तर युग में साहित्यकारों का जीवन के कठोर यथार्थ से सीधा साक्षात्कार हुआ। फलतः जीवनीकार का भी अपने चरित-नायक के प्रति अंध-भक्तिपरक दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया। अब जीवनी चरित-नायक का प्रशस्तिपरक चित्र न होकर अपने व्यक्तित्व का गुण-दोषपूर्ण चित्रण होने लगी। इसी परिवर्तित दृष्टिकोण ने जीवनी के स्वरूप को प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता प्रदान की। अब जीवनी के चरित-नायक अति-मानवीय चरित्र न होकर हाड़-मांस युक्त ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुए, जीवनगत संघर्षों के बीच जिसका जीवन मानव मात्र के लिए प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में भी जीवनी के चरित-नायकों का चुनाव जीवन के विविध क्षेत्रों से किया जाता रहा। धर्म, समाज, राजनीति, साहित्य - इन सभी क्षेत्रों से संबद्ध विशिष्ट व्यक्ति जीवनीकारों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहे और इस युग की कुछ महत्वपूर्ण जीवनियाँ इन्हीं के जीवन को केंद्र में रखकर लिखी गईं।

राजनीतिक क्षेत्र से संबंधित व्यक्तियों पर जीवनी लिखने वाले साहित्यकारों में पंडित राहुल सांकृत्यायन का नाम विशेष सम्मान का अधिकारी है। साम्यवादी विचारधारा को उसके पूर्ण परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा उसके नेताओं के प्रति आस्था उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने 1953 में 'स्तालिन', 1954 में 'कार्ल मार्क्स' तथा 'लेनिन' और 1956 में 'माओ त्से तुंग' की जीवनियाँ लिखीं।

इस श्रेणी में रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा लिखित 'कार्ल मार्क्स' तथा जयप्रकाश नारायण की जीवनियों का भी अपना महत्व है। समकालीन राजनीतिक नेताओं के जीवन को केंद्र में रखकर जो जीवनियाँ लिखी गईं उनमें ओंकार शरद द्वारा लिखित 'राममनोहर लोहिया' (1971) इस युग में प्रमुख रही है।

गद्य की आधुनिक विधा के रूप में जहाँ 'जीवनी' अपने पूर्ण उत्कर्ष पर दिखाई देती है वह है अपने समय के प्रसिद्ध साहित्यकारों पर लिखी गईं जीवनियाँ जो एक लेखक के व्यक्तित्व, उसके युग तथा उसकी रचना-प्रक्रिया को समझने में सहायक रही है। इस दृष्टि से पत्रकार ऋषि जैमिनी, कौशिक 'बारुआ' द्वारा लिखित 'माखनलाल चतुर्वेदी' (1960) की जीवनी, प्रेमचंद के जीवन पर केंद्रित उनके पुत्र अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' (1962), डॉ.रामविलास शर्मा द्वारा रचित 'निराला की साहित्य साधना' का प्रथम खंड (1969) तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार शरत्चंद्र के जीवन पर आधारित विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी गई जीवनी 'आवारा मसीहा' विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जीवनी लेखन के जो बीज हिंदी साहित्य के आरंभिक काल में दिखाई पड़े थे आधुनिक काल में पूर्णतः पल्लवित एवं विकसित हुए हैं। आधुनिक काल में जीवनी गद्य साहित्य की एक शक्त विधा बनकर उभरी है। न केवल परिमाण की दृष्टि से बल्कि वैविध्य एवं गुणवत्ता की दृष्टि से भी उसका उत्तरोत्तर विकास हो गया है।

22.4 कलम का सिपाही : जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि

अमृतराय द्वारा लिखित **प्रेमचंद : कलम का सिपाही** जीवनी विधा की परिपक्वता की पहचान है और हिंदी साहित्य की एक अन्यतम उपलब्धि भी। प्रेमचंद केवल एक व्यक्ति-विशेष नहीं है, वे एक समूचे युग के प्रणेता हैं। उनका सर्जनात्मक व्यक्तित्व जीवन और साहित्य की खाई को पाटने वाला अथक प्रयास है। प्रेमचंद के अनुसार साहित्य की सार्थकता उसके मानव समाज से जुड़े रहने में ही है। साहित्य और समाज का दिशा-निर्देश करने वाले प्रेमचंद का जीवन अति-साधारण होते हुए भी अपने युग के अंतर्विरोधों का प्रतिबिंब है। अमृतराय ने उनके जीवन के इसी रूप को साकार किया है।

प्रेमचंद का जीवन औसत भारतीय जन जैसा है। यह साधारणत्व एवं सहजता प्रेमचंद की विशेषता है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है - 'मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गढ़े तो हैं पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन है उन्हें तो यहाँ निराशा ही होंगी।' (भूमिका, **कलम का सिपाही,** पृ.4)

प्रेमचंद की यह सहजता यत्न-साधित या एक लेखक की ओढ़ी हुई विशिष्ट मुद्रा नहीं है। अमृतराय कहते हैं - 'प्रेमचंद की सरलता सहज है।.....नहीं, वह कस्तूरी मृग नहीं है जिसे अपने भीतर की कस्तूरी का पता नहीं। उसे पता है कि उसके भीतर ऐसा भी कुछ है जो मूल्यवान है,उसका अपना है, नितांत अपना, मौलिक, विशेष वही उसका मोती है, मानिक है।' (भूमिका, **कलम का सिपाही**, पृ.2)

प्रेमचंद की सरलता, सहज होते हुए भी जटिल है। वह इकहरी नहीं है - केवल उस व्यक्ति तक सीमित नही है। वस्तुतः प्रेमचंद का 'स्व', 'सर्व' से जुड़े बिना परिभाषित किया ही नहीं जा सकता। प्रेमचंद की चेतना भारतीय पुनर्जागरण के दौर में विकसित हुई है। राजनीतिक दृष्टि से यह गहरी उथल-पुथल और मानसिक ऊहापोह का युग था। अमृतराय ने इसीलिए कांग्रेस के इतिहास के लंबे विवरण दिए हैं और प्रेमचंद का युवा-मानस किस तरह उन सबसे प्रभावित होता है लेखक ने इसका उचित रेखांकन किया है। आरंभ में प्रेमचंद गोखले से

प्रभावित होते हैं और बाद में तिलक का व्यक्तित्व उन्हें अधिक आकर्षित करता है। लेखक की दृष्टि में इन दोनों का समंजन गांधी जी की नैतिक सुधारपरक चेतना में मिलता है जो एक लंबे समय तक प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर हावी रहा।

चरित-लेखक अमृतराय ने अपने चरित-नायक प्रेमचंद के वैचारिक और भावात्मक विकास को तत्कालीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। अतः उनके व्यक्तित्व में उस युग-यथार्थ की जटिलतर अभिव्यक्ति संभव हुई है। **कलम का सिपाही** की भूमिका में अमृतराय ने प्रेमचंद की विचारधारा को वाणी देते हुए लिखा है :

'मैं तो नदी किनारे खड़ा हुआ नरकुल हूँ, हवा के थपेड़ों से मेरे अंदर भी आवाज़ पैदा हो जाती है। बस इतनी-सी बात है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, जो कुछ है इन हवाओं का है जो मेरे भीतर बजीं।'
(भूमिका - **कलम का सिपाही**, पृ.4)

अमृतराय ने इन्हीं हवाओं को पकड़ने की कोशिश की है। स्वातंत्र्य-पूर्व युग में प्रेमचंद ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी राष्ट्रीय-सामाजिक परिवर्तन लाने में एक सक्रिय भूमिका रही है। प्रेमचंद का रचनात्मक साहित्य, संपादकीय टिप्पणियाँ और उनके पत्र आदि इस सत्य के साक्षी हैं।

प्रेमचंद के जीवन-चरित को उभारने में एक ओर यदि लेखक ने युग की विस्तृत पृष्ठभूमि को लिया है तो दूसरी ओर छोटे-छोटे पारिवारिक प्रसंगों का संयोजन हैं जिनमें प्रेमचंद के मानसिक द्वंद्व और आर्थिक परेशानियों की अभिव्यक्ति हुई है। अमृतराय ने प्रेमचंद का पुत्र होते हुए भी जीवनी लेखन के लिए पूर्ण तटस्थता का निर्वाह किया है। डॉ.बच्चन सिंह के शब्दों में - 'जब पुत्र पिता की जीवनी लिख रहा हो तो यह काम और भी जोखिम का हो जाता है लेकिन कुल मिलाकर अमृतराय ने जिस तटस्थता का परिचय दिया है वह श्लाघ्य है।' (डॉ. बच्चन सिंह - कलम का सिपाही : एक युग का संदर्भ; संपा. मन्मथनाथ गुप्त - समसामयिक हिंदी साहित्य, पृ.193)

प्रेमचंद की कहानियों और उनके जीवन संदर्भों पर लेखक की ऐसी अनेक टिप्पणियाँ हैं जो प्रेमचंद की कमज़ोरियों और उनकी सीमाओं को भी प्रत्यक्ष करती हैं। पुत्री को उच्च शिक्षा न दिला सकने के प्रसंग में अमृतराय ने यहाँ तक कहा है कि अन्य मजबूरियों के साथ मुंशी जी के मन की वह मजबूरी भी रही होगी जो स्त्री की नयी शिक्षा के प्रति कुछ संशयग्रस्त थी। जैसे 'राम की शक्ति पूजा' में निराला राम के उस मन की बात करते हैं जो कभी नहीं थकता - 'एक और मन रहा राम का जो न थका' उसी तरह प्रेमचंद भी यहाँ गहरे मानसिक द्वंद्व और अंतःसंघर्ष से गुज़रते दिखाई पड़ते हैं। एक ओर तो ऊपर से देखने पर प्रेमचंद का समाज-भीरू व्यक्तित्व है और दूसरी ओर समाज में परिवर्तन लाने वाली प्रगतिशील शक्तियों के हाथ मज़बूत करने के लिए उनकी कलम बराबर चलती रही। लेकिन प्रेमचंद की यह जीवन-यात्रा अत्यंत कठिन है। जीवन के अंत में मृत्यु-शैय्या पर पड़े प्रेमचंद का जैनेन्द्र से यह कहना कि 'अब आदर्श से काम नहीं चलेगा।' कहीं उनकी आशाओं और दृढ़ विश्वासों के स्खलन का सूचक है। प्रेमचंद के मन की इसी पीड़ा को अमृतराय ने बखूबी शब्दबद्ध किया है। इसीलिए प्रेमचंद की यह जीवनी मात्र उनके जीवन की घटनाओं का ब्यौरा भर नहीं है बल्कि उनके जीवन का ऐसा पुनः सृजन है जहाँ पाठक भी अपने युग के इतने बड़े साहित्यिक की जीवन-यात्रा का सहयात्री बन जाता है। प्रेमचंद को पूर्णतः समझने के लिए उनकी यह जीवनी एक सार्थक सोपान है।

प्रेमचंद ने स्वयं कोई आत्मकथा नहीं लिखी, न ही अपने विषय में कोई लेख लिखा और न ही वे डायरी लिखा करते थे। यहाँ तक कि अपने पत्रों को भी संभाल कर नहीं रखते थे। इससे जीवनी लेखक का काम और भी कठिन हो गया। सामग्री संकलन के लिए उन्हें विशेष प्रयास करने पड़े हैं। लेखक ने जहाँ से हो सका उनके पत्रों को इकट्ठा किया, उनपर लिखे गए

संस्मरणों का आश्रय लिया और साथ ही उनके रचनात्मक साहित्य के पात्रों में भी प्रेमचंद के जीवन-प्रसंगों को ढूंढा है। यहाँ एक खतरा पैदा हो जाता है। कथा-साहित्य के पात्रों की प्रेरणा स्वानुभूत जीवन-प्रसंगों की हो सकती है लेकिन उनके सृजन में लेखक की कल्पना का भी बहुत बड़ा योगदान रहता है। अतः पात्रों के जीवन में प्रेमचंद के जीवन को तलाशना बहुत उचित नहीं है। इसी तरह, संस्मरणों के प्रयोग में भी अतिरिक्त सावधानी की अपेक्षा रहती है क्योंकि संस्मरण लेखक का 'स्व' या उसके श्रद्धापरक दृष्टिकोण ही अपने चरित-नायक के व्यक्तित्व को उभारने में अधिक क्रियाशील रहता है। जीवनी के अंत में, अमृतराय ने प्रेमचंद के अंतिम दिनों का वर्णन किया है और उसमें उनपर लिखे गए संस्मरणों का बहुत प्रयोग हुआ है। ये संस्मरण मार्मिक होते हुए भी भावाविष्ट हैं, इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता।

जहाँ तक उनके पत्रों का प्रश्न है, तो उसमें उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उभरे हैं - सुख-दुःख, आशा-आकांक्षाएँ, आर्थिक तंगहाली, वैचारिक संघर्ष आदि।

कुल मिलाकर, इन सभी स्रोतों से संकलित सामग्री के आधार पर अमृतराय ने प्रेमचंद के जीवन को जिस समग्रता से प्रस्तुत किया है वह रोचक भी है और आकर्षक भी। इस सबमें अमृतराय की भाषा का भी बहुत बड़ा योगदान है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है और शब्दों के वे धनी हैं। अतः भाषा की सजीवता एवं सशक्तता ने इस जीवनी को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

22.5 कलम का सिपाही : वस्तु और संवेदना

जीवनी विधा की दृष्टि से **कलम का सिपाही** की अद्वितीयता स्वतःसिद्ध है, जिस रूप में यह जीवनी प्रेमचंद जैसे साहित्य-सेवी के जीवन-संघर्ष और उनकी विचारधारा को प्रस्तुत करती है वह अपने आप में इस विधा की प्रभविष्णुता का प्रमाण है। प्रस्तुत अंश जीवनी के अध्याय 32 में से है। यह इस जीवनी की प्रातिनिधिक झलक है। इस अध्याय में प्रेमचंद का जो चित्र उपस्थित हुआ है उसमें उनके व्यक्तित्व के सभी रंग दिखाई पड़ते हैं। परिवार के छोटे-छोटे सुख-दुःखों में फंसे साधारण व्यक्ति-जीवन से लेकर राष्ट्रीय-सामाजिक और साहित्यिक मसलों पर गंभीरता से विचार करने वाले बुद्धिजीवी-जीवन तक प्रेमचंद का जीवन फैला हुआ था। प्रस्तुत अध्याय संपूर्ण जीवनी के संदर्भ में उसे उभारने में सक्षम है।

अध्याय के प्रारंभिक अंशों में प्रेमचंद के गार्हस्थिक जीवन की झलक प्रस्तुत की गई है। लेखन कार्य में तल्लीन प्रेमचंद को परिवार के सदस्यों का बार-बार आकर पुकारना और अंत में पत्नी शिवरानी देवी का स्वयं आकर कलम छुड़ाना और ज़बरदस्ती भोजन के लिए ले जाना, बच्चों का पिता के साथ ही भोजन करने की प्रतीक्षा में सो जाना और फिर सबका एक-साथ बैठकर रात का भोजन करना - इन सब प्रसंगों द्वारा अमृतराय ने प्रेमचंद के पारिवारिक जीवन, उनके सहज व्यक्तित्व तथा परस्पर आत्मीयता की सुंदर संक्षिप्त झलक प्रस्तुत की है। कहीं पर स्वयं जी तोड़कर मेहनत करने वाले प्रेमचंद अपने बच्चों को सदैव खेलने-कूदने की नसीहत देते प्रस्तुत हुए हैं तो कहीं बीमार बेटी के स्वास्थ्य की चिंता में विचार-मग्न।

प्रेमचंद का साहित्यिक व्यक्तित्व भले ही समृद्धि के शिखर पर रहा हो लेकिन व्यक्तिगत जीवन में वे सदैव अभावों और तकलीफों से घिरे रहे। अपने मित्रों को लिखे पत्रों में प्रेमचंद ने बार-बार अपनी स्थितियों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत अध्याय में उन पत्रों के कुछ अंश अमृतराय ने उद्धृत किए हैं, जिनमें प्रेमचंद के संघर्षरत जीवन की व्यथा-कथा झलकती है :

'मैं तो इधर बहुत परेशान रहा।.....बेटी के पुत्र हुआ और उसे प्रसूत ज्वर ने पकड़ लिया, मरते-मरते बची....।...मैं अकेला रह गया था। बीमार पड़ा, दाँतों ने कष्ट दिया....बुढ़ापा स्वयं रोग है और अब मुझे उसने स्वीकार करा दिया कि अब मैं उसके पंजे में आ गया हूँ।'

किंतु बुढ़ापे का यह अहसास, अस्वस्थता और बेचारगी, प्रेमचंद के व्यक्तित्व पर कभी हावी नहीं रहे, भले ही शारीरिक स्तर पर उन्होंने इसकी पीड़ा को भोगा हो। अमृतराय ने बहुत सुंदर-सटीक शब्दों में प्रेमचंद के जीवट का परिचय दिया है :

'बुढ़ापा वह है जब चित्त बुड्ढा हो जाता है और आदमी केवल साँस के आने-जाने को ज़िन्दगी समझने लगता है। जब निष्ठा के पैर डगमगाने लगते हैं और तरुणाई के आदर्श संकल्प सदा झूठे जान पड़ते हैं। जब अन्याय देखकर आँखों में खून नहीं उतरता, बुढ़ापा वह है। यहाँ तो अभी वैसी कोई बात नहीं है।'

वस्तुतः प्रेमचंद के व्यक्तित्व में जो उत्कट जिजीविषा और जीवंतता है वही इस अध्याय में प्रमुख रूप से उभरी है। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ता हुआ, साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति सचेत, साहित्यिक मसलों पर निडर और दो-टूक बात करने वाला 'प्रेमचंद का जुझारू रूप अनेक घटनाओं के माध्यम से उभरकर सामने आया है। जैसा कि अमृतराय ने टिप्पणी की है - '.....कोई भी बात हो, छोटी हो बड़ा हो, अपनी हो' पराई हो, जहाँ भी कोई अन्याय हो रहा हो, मुंशीजी जूझने के लिए तैयार हैं।'

राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति मुंशी जी सदा जागरूक दिखते हैं। हज़रत मुहम्मद की पुण्य-तिथि पर हुए जलसे और उसमें पंडित सुंदरलाल की दी हुई स्पीच को वे अपनी पत्रिका में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। जबकि दोनों सम्प्रदायों के बीच विद्वेष बढ़ाने वाले हर व्यक्ति को वे आड़े-हाथों लेते हैं फिर चाहे वह कोई प्रसिद्ध लेखक ही क्यों न हो :

'इन चतुरसेन को क्या हो गया कि 'इस्लाम का विषवृक्ष' लिख डाला? उसकी एक आलोचना तुम लिखो और वह पुस्तक मेरे पास भेजो.....इस कम्युनल प्रोपेगण्डा का ज़ोरों से मुकाबला करना होगा.....' (कलम का सिपाही, पृ.495)

प्रेमचंद के भीतर एक बेचैनी है परिवर्तन की। समाज की प्रत्येक गतिविधि पर उनकी राय है और जहाँ भी, जो कुछ भी विकास के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला है उससे डटकर लोहा लेना, अपनी कलम की ताक़त से उसके समस्त छिद्रों का उद्घाटन कर अपना विरोध प्रकट करना, प्रेमचंद की शख्सियत का हिस्सा है। चाहे परंपरागत हिंदू समाज में कोढ़ की भांति फैली कुरीतियों और पुरोहित वर्ग के शोषण की बात हो, चाहे आधुनिक समाज में पूँजीवादी की स्वार्थ नीति का विषय हो। प्रेमचंद इन ह्रासशील और समाज का अहित करने वाले विशिष्ट वर्गों का खुलकर विरोध करते दिखते हैं।

ब्राह्मणत्व प्रेमचंद की दृष्टि में एक विशिष्ट पदवी है जिसे कोई भी व्यक्ति सेवा और त्याग के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है लेकिन हिंदू समाज में ब्राह्मणत्व के नाम पर जिस प्रकार पण्डे और पुरोहित अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं और भोली-भाली जनता को धार्मिक आडम्बरों और अंधविश्वासों में जकड़कर रख देते हैं, उस प्रवृत्ति का प्रेमचंद खुलकर विरोध करते हैं। उनके कथा-साहित्य में इसी तथाकथित ब्राह्मण वर्ग के विरुद्ध उठाई गई आवाज़ को लक्षित कर उन्हें घृणा का प्रचारक तथा ब्राह्मण विरोधी भी कहा गया। इस आक्षेप का उत्तर प्रेमचंद बड़ी सधी हुई भाषा में देते हैं। इस विषय में उनकी स्पष्ट राय है कि - 'इन पुजारियों और पंडों को मैं हिंदू जाति का अभिशाप समझता हूँ, वही हमारे पतन का कारण हैं।'

प्रेमचंद हिंदू जाति को पुरोहितों, पुजारियों, पंडों और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से मुक्त कराने के अभिलाषी हैं। वे मानते हैं कि हिंदू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है।

पूँजीवादी अर्थ-नैतिक विडम्बना पर भी मुंशीजी के विचार स्पष्ट रूप से इस अध्याय में उभरकर आए हैं। उनके अनुसार, वर्तमान समय में सामाजिक विसंगतियों की जड़ यही वर्ग है। पूँजीवादी

चाहे वह किसी भी देश या जाति का हो, मुंशी जी उसे एक ही प्रवृत्ति का मानते हैं और संसार में आई हुई हर तबाही का कारण पूँजीपति को ही मानते हैं :

'यह साम्राज्यवाद की विपत्ति जिससे संसार त्राहि-त्राहि कर रहा है, यह किसकी बुलाई हुई है? इन्हीं कुबेर के गुलामों की। .....यह जो बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं जिनमें खून की नदियाँ बह जाती हैं इसका ज़िम्मेदार कौन है? यही लक्ष्मी के उपासक।'

इसलिए वे मानते हैं कि जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता। पुरोहितवाद की ही तरह, इस पूँजीवाद के प्रति भी प्रेमचंद की लेखनी में असंतोष और आक्रोश के तीखे स्वर हैं :

'....यह आशा करना कि पूँजीपति किसानों की दीन दशा से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते से चमड़े की रखवाली करने की आशा करना है। इस खूंखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिए हमें स्वयं सशस्त्र होना पड़ेगा।'

प्रेमचंद का जीवन और उनका बहु-आयामी व्यक्तित्व हर मोर्चे पर कमर कसे दिखाई देता है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय हर महत्वपूर्ण मसले पर उनका गंभीर चिंतन उनके सरोकारों का स्पष्ट उदाहरण है, चाहे सीमा प्रदेश में हो रही बमबारी हो या पुलिस के अमानवीय कृत्य, कोर्ट-कचहरी की लचर व्यवस्था हो या जेलों की स्थिति। मुंशी जी की लेखनी हर मसले पर उठती है, एक अन्य घटना जिसका संबंध तत्कालीन साहित्यिक माहौल से है, प्रस्तुत अध्याय में विस्तार से वर्णित की गई है। ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने बनारसीदास का इंटरव्यू लेकर उसमें अपनी तरफ से नमक-मिर्च लगाकर पत्रिका में छाप दिया, मुंशी जी इस मसले पर भी चुप नहीं रहे और 'साहित्यिक गुंडापन' शीर्षक से 'हंस' में इस मामले की चर्चा करते हुए कूद पड़े और बनारसीदास जी की ओर से ज़ोरदार पैरवी कर डाली। इस प्रसंग से जहाँ प्रेमचंद की सहृदयता, निर्भीकता और बेलाग बात करने की प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है वहीं तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की साधनहीनता और उनकी दयनीय स्थिति का भी संकेत मिलता है :

'इस होड़ युग में अन्य व्यवसायों की भांति पत्र-पत्रिकाओं को अपने स्वामियों या संचालकों को नफ़ा देने या अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए तरह-तरह की चालें चलनी पड़ती हैं.....स्वामी नफ़ा चाहता है और नफ़ा न हुआ तो बेचारे संपादक की जान की कुशल नहीं।'

लेखक संघ की स्थापना के प्रश्न पर भी प्रेमचंद के विचार प्रस्तुत अध्याय में प्रकाशित हुए हैं। प्रेमचंद जी स्वयं एक भुक्तभोगी लेखक रहे, लेकिन लेखकों के अधिकारों और हितों क लिए बने लेखक संघ के प्रस्ताव को उन्होंने अधिक तवज्जो नहीं दी। वस्तुतः लेखक संघ को लेखकों के ट्रेड यूनियन के रूप में गठित करना - जिसका अकेला काम प्रकाशकों के साथ टक्कर लेना हो, उन्हें स्वीकार नहीं। इस संदर्भ में प्रेमचंद द्वारा की गई टिप्पणी के पीछे उनकी विवेकपूर्ण दृष्टि का आधार रहा है :

'मौजूदा हालत ऐसी नहीं कि प्रकाशकों को लेखकों के साथ ज़्यादा न्यायसंगत व्यवहार करने पर मजबूर किया जा सके.....इस समय एक भी ऐसा साहित्य ग्रंथ प्रकाशक नहीं है जो नफ़े से काम कर रहा हो...वे प्रायः बड़ी मुश्किल से अपनी लागत निकाल पाते हैं।'

यद्यपि **कलम का सिपाही** के इस विवेच्य अध्याय में प्रेमचंद का जुझारू व्यक्तित्व ही उभरकर सामने आता है, जो हर कठिनाई, हर चुनौती का सामना करने को प्रस्तुत है लेकिन कहीं-कहीं उनकी निराशा और टूटन की झलक भी मिलती है। विशेष रूप से पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में। प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध पत्र 'हंस' के साथ-साथ 'जागरण' का दायित्व भी संभाला था लेकिन पत्रिकाओं की दयनीय दशा का असर उनके प्रकाशन पर भी पड़ा, उनके पूरे श्रम और समर्पण के बावजूद भी दोनों पत्र घाटे में चलते रहे। कभी कागज़ के पैसे चुकाने में कठिनाई हो, कभी मज़दूरों के वेतन की समस्या, जिससे निपटने के लिए वे

पूँजीपतियों से गुज़ारिश करते हैं ताकि विज्ञापन मिल सकें, इधर-उधर हाथ-पैर मारते हैं, पर फिर भी प्रकाशन का कार्य छोड़ नहीं पाते। अपनी किताबों की आमदनी फूँककर अपनी ज़िन्दगी का आराम-चैन गंवाकर भी इस कार्य को संभाले रहते हैं। अपने सहयोगी मित्रों को लिखे पत्रों में उनकी हताशा, छटपटाहट और जद्दोजहद बड़ी शिद्दत से उभरी है :

'दस हज़ार रुपए और ग्यारह साल की मेहनत सब अकारथ हो गई। इस प्रेस के पीछे कितने मित्रों से बुरा बना, कितनों से वादा ख़िलाफ़ी की, कितना बहुमूल्य समय जो लिखने में कटता बेकार प्रूफ देखने में कटा। मेरी ज़िन्दगी की यह सबसे बड़ी गलती है।'

इस तरह, संवेदना के स्तर पर प्रस्तुत अध्याय प्रेमचंद के संघर्षशील व्यक्तित्व को रूपायित करने के साथ-साथ तद्युगीन समस्याओं, साम्प्रदायिकता और पूँजीवाद के स्वरूप को भी प्रकट करता है। आज प्रेमचंद की प्रतिष्ठा एक युग-प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में है लेकिन उस समय में वे किस तरह साहित्यिक विवादों के घेरे में फंसे रहे और साहित्य को व्यवसाय बनाने वाले साहित्य-कर्मियों का उन्होंने कैसे डटकर विरोध किया उससे उनके जीवट का पता चलता है। साहित्य को अपने जीवन का उद्देश्य मानने वाले प्रेमचंद ने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी 'हंस' और 'जागरण' को चलाने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन अपने निकट उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि शायद यह उनके जीवन की सबसे बड़ी गलती थी। फिर भी तमाम निराशाओं के बावजूद वे निरुत्साहित नहीं हुए बल्कि जीवन के अंत तक अपनी इस साधना में लीन रहे। प्रेमचंद के ऐसे अपराजेय, युगद्रष्टा और क्रान्तदर्शी व्यक्तित्व को साकार करने में अमृतराय निश्चित रूप से सफल रहे हैं। प्रस्तुत अध्याय इस सत्य का प्रमाण है।

22.6 कलम का सिपाही : शिल्पगत वैशिष्ट्य

कलम का सिपाही एक जीवनी है और जीवनी का शिल्प अत्यंत विशिष्ट होता है। यह एक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन की कथा है लेकिन कथात्मक होते हुए भी उपन्यास की भांति इसके पात्र कल्पना निर्मित नहीं हैं। सत्य घटनाओं और तथ्यात्मकता का निर्वाह इसके लिए परमावश्यक है। अतः यहाँ लेखक तथ्यों से बंधा रहता है, वह स्वेच्छा से न तो घटनाओं को बदल सकता है न मनचाहा मोड़ दे सकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि तथ्यात्मकता पर बल देते हुए भी यह कोरा इतिहास नहीं है उसमें कल्पना, भावानुभूति का भी योगदान रहता है। इस दृष्टि से जीवनी लेखन रचनाकार से विशिष्ट रचना सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है। जीवनी लेखन एक प्रक्रिया है - जहाँ रचनाकार चरित नायक की जीवन यात्रा का सहचर बनकर पाठक को भी उसका समभागी बनाता है। अमृतराय ने **'कलम का सिपाही'** की रचना द्वारा भाषा और शिल्प पर अपनी पकड़ को सिद्ध कर दिया है। लेखक ने कथात्मक शैली में प्रेमचंद के जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध संयोजन किया है। वस्तुतः यहाँ कथा जैसा प्रवाह और सरसता भी है और वैज्ञानिक दृष्टि की तटस्थता और निरपेक्षता भी।

प्रेमचंद के चरित्र को समग्रता से प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने उसके चरित्र के मुख्यतः दो पक्षों को उजागर किया है। एक उनका निजी व्यक्तिगत पक्ष जहाँ वे बराबर अर्थाभाव से जूझते, छोटी-छोटी पारिवारिक परेशानियों में फंसे दिखाई पड़ते हैं तो उनके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष सामाजिक-राष्ट्रीय उत्थान के लिए संकल्पबद्ध नज़र आता है। चरित्र चित्रण के लिए लेखक ने जो शैली अपनाई है उसमें प्रेमचंद के लंबे-लंबे वक्तव्यों के उद्धरण हैं और बीच-बीच में उनपर लेखक की अपनी टिप्पणियाँ हैं। प्रस्तुत अध्याय में अनेक मुद्दों पर जैसे कि पूँजीवाद, साम्प्रदायिकता, साहित्यिक गुटबाज़ी, साहित्य में अर्थ के हस्तक्षेप आदि पर प्रेमचंद के विचार संकलित हैं। इन सबमें प्रेमचंद के बहु-आयामी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। लंबे उद्धरण होने से लेखक का अपना हस्तक्षेप बहुत सीमित हो गया है। सवाल यह है कि क्या यह पद्धति जीवनी की सरसता को बाधित करती है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ऐसा जीवनी की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए किया गया है। इससे, पूरी जीवनी में

प्रेमचंद की मौजूदगी का अहसास भी बढ़ा है और बीच-बीच में जहाँ लेखक की टिप्पणियाँ हैं वे अत्यंत सशक्त हैं जैसे बनारसीदास चतुर्वेदी के प्रसंग में जहाँ प्रेमचंद ने 'साहित्यिक गुंडापन' का पर्दाफाश करते हुए व्यावसायिकता के लिए सनसनी पैदा करने की पद्धति से बचने का आग्रह किया है। अमृतराय लिखते हैं - 'चतुर्वेदी जी शायद खुद भी अपनी वकालत इतने ज़ोरदार शब्दों में न कर पाते। मैदान में उतरने पर मुंशी जी फिर सुध-बुध खोकर लड़ते हैं, न आगे देखते हैं न पीछे।'

अमृतराय ने प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन इस रूप में किया है कि उसके माध्यम से युगीन अभिव्यक्ति भी सस्वर हो गई है। वस्तुतः इस जीवनी में व्यक्ति और युग का अद्‌भुत समन्वय जीवनी की रचना प्रक्रिया में पूर्णतः अनुस्यूत है। प्रेमचंद द्वारा ब्राह्मणवाद के खण्डन के प्रसंगों में लेखक यह स्पष्ट कर पाया है कि बदलते समय में सामाजिक समीकरणों के बदलने पर भी शोषण का रूप नहीं बदला। प्रेमचंद का विरोध उन टकेपंथी ब्राह्मणों से है जो अपने प्राचीन अधिकारों के दम पर एक बड़े वर्ग को साधन और सुविधाओं से वंचित किए हुए है। अमृतराय टिप्पणी करते हैं - 'मुंशी जी की लड़ाई उनके इसी धर्म - उपजीवी, धर्म व्यवसायी रूप से है, ब्राह्मण जाति से लड़ाई करके क्या होगा।'

अमृतराय ने इस जीवनी की रचना एक विस्तृत फलक पर की है। इसीलिए उन्हें सामग्री संकलन के लिए भी कठोर परिश्रम करना पड़ा है। वस्तुतः एक ही अध्याय में प्रेमचंद के व्यक्तित्व के कितने पक्ष उजागर हुए हैं यह लेखक के श्रम का प्रमाण है। उनके पत्रों, संपादकीय टिप्पणियों और कहानी के साक्ष्य से प्रेमचंद की एक समग्र छवि उभारने में अमृतराय सफल रहे हैं।

कलम का सिपाही की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय इसकी भाषा को भी है। डॉ.बच्चन सिंह ने लिखा है - 'भाषा और शैली तो लेखक को प्रेमचंद से विरासत में मिली है। सारी जीवनी अद्‌भुत प्रवाहमयता से युक्त है। यह लेखक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवनी साहित्य के लिए उसने भाषा का नया आदर्श प्रस्तुत किया है।' (डॉ. बच्चन सिंह - कलम का सिपाही : एक युग का संदर्भ; संपा. मन्मथनाथ गुप्त - समसामयिक हिंदी साहित्य, पृ.193)

वस्तुतः पूरी जीवनी में प्रेमचंद के लंबे-लंबे उद्धरण दिए गए हैं। अतः जीवनी में प्रेमचंद और अमृतराय दोनों के ही भाषाधिकार का परिचय मिलता है। प्रेमचंद की भाषा भावाविष्ट भाषा है, उनकी तुलना में अमृतराय ने अधिक संयम का परिचय दिया है। मुख्यतः प्रेमचंद को प्रेमचंद के ही शब्दों में चित्रित किया गया है लेकिन जहाँ बीच में रुककर लेखक ने अपनी टिप्पणी की है वहाँ उसके शब्द चयन और वाक्य विन्यास उसकी भाषा की प्रौढ़ता के सूचक हैं। अमृतराय में कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है। सरसता, रोचकता और प्रवाह के गुण उनकी भाषा में सहज ही समाविष्ट हो गए हैं :

'मुंशी जी इस हमले से सिटपिटा जाने वाले आसामी नहीं है।'

x x x x x

'मुंशी जी ने शेर की तरह दहाड़ते हुए फौरन 'जागरण' में जवाब दिया..'

x x x x x

'किसान की सरलता है तो कहीं उसी किसान का घाघपन भी है। निरे भोंदू नहीं हैं मुंशी जी!'

कलम का सिपाही को प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानते हुए शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं - **कलम का सिपाही** अमृतराय की प्रशंसनीय कथोपलब्धि मानी जाएगी। यह अद्‌भुत किस्सागोई और षट्‌रस ज़बान किसी को भी एक बार अपनी लपेट में ले लेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।' (शिवप्रसाद सिंह : 'एक व्यक्ति : एक युग', संपा. देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग, पृ.417)

22.7 'कलम का सिपाही' का मूल्यांकन

जीवनी व्यक्ति-जीवन और युग सत्य के समंजन से निःसृत एक अनूठी विधा है और जब यह जीवनी एक साहित्यकार की होती है तब उसे एक ओर आयाम मिल जाता है। उसमें लेखक की रचना-प्रक्रिया भी स्पष्ट होने लगती है। प्रेमचंद की जीवनी **'कलम का सिपाही'** इस दृष्टि से उनके जीवन के सभी पक्षों को प्रस्तुत करने वाला दस्तावेज़ है। शिवप्रसाद सिंह मानते हैं - 'यह जीवनी एक प्रकार से हिंदी के आधुनिक युग के आरंभ का ज्ञानकोश बन गई है। इसके माध्यम से अनेक समस्याएँ - राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक जो हमारे देश के इतिहास का अंग बन गई हैं, नए सिरे से एक व्यक्ति का संदर्भ बनकर उठी हैं और ये 'प्रेमचंद व्यक्ति' को समझने में सहायक हुई हैं। उनसे हमारे साहित्य पर एक नया प्रकाश पड़ा है।' (शिवप्रसाद सिंह : 'एक व्यक्ति : एक युग', संपा. देवीशंकर अवस्थी, विवेक के रंग, पृ.417)

प्रेमचंद पर तीन जीवनियाँ लिखी गई हैं। उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने **'प्रेमचंद : घर में'** शीर्षक से उनके जीवन प्रसंगों का संयोजन किया। श्री मदन गोपाल ने **'कलम का मज़दूर'** लिखकर प्रेमचंद के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डाला। **कलम का सिपाही** इन दोनों जीवनियों से भिन्न है। उसमें रचनात्मक साहित्य जैसी सरसता और प्रवाह है। साथ ही, प्रेमचंद के बहु-आयामी व्यक्तित्व को उनके युग और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। जीवनी के लेखक के लिए उन शक्तियों की पहचान करना आवश्यक है जो उसके चरित नायक के जीवन को गढ़ती है। इस दृष्टि से अमृतराय द्वारा लिखित **'प्रेमचंद : कलम का सिपाही'** हिंदी जीवनी साहित्य को उनका प्रशंसनीय योगदान है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद एक ऐसा नाम है जिसे किसी परिचय की अपेक्षा नहीं। उनका साहित्य सोद्देश्य साहित्य है।

वस्तुतः पुनर्जागरण के उस दौर में प्रेमचंद के लिए साहित्य एक अस्त्र है - राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन को संभव बनाने का। इसीलिए उनके द्वारा लिए गए प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पंक्ति में उनका वैचारिक संघर्ष प्रतिध्वनित होता है। प्रेमचंद ने न केवल अपने साहित्य में तत्कालीन युग यथार्थ की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति की है अपितु उस युग यथार्थ को निर्मित करने में एक सक्रिय भूमिका भी निभाई है। अमृतराय ने प्रस्तुत जीवनी में उनके इसी स्वरूप को उभारने का प्रयत्न किया है।

यह जीवनी एक पुत्र द्वारा लिखी गई अपने पिता की जीवनी है। अतः प्रेमचंद के निजी जीवन से उनका घनिष्ठ संबंध है। लेकिन अमृतराय ने प्रेमचंद का व्यक्तित्वांकन केवल उस घर के दायरे में रखकर नहीं किया। हर प्रकार की अतिरेकी दृष्टि से बचते हुए पूर्ण तटस्थता के साथ लेखक ने अपने चरित-नायक को उसके साहित्य और परिवेश के समस्त संदर्भों के बीच एक क्रांतिदर्शी विचारक, संघर्षशील चेतना के अग्रदूत, परिवर्तन कामी शक्तियों के पक्षधर के रूप में चित्रित किया है। यही इस जीवनी की सबसे बड़ी विशेषता है।

22.8 सारांश

जीवनी - व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व को समग्रतः अभिव्यक्त करने वाली गद्य की महत्वपूर्ण विधा है। जीवनी के केंद्र में चरित नायक का जीवन एवं चरित्र, युग और पृष्ठभूमि सबका विशिष्ट कलात्मक समंजन रहता है। तथ्यपरकता तथा जीवनगत सत्य जीवनी के लिए जितने आवश्यक हैं उतनी ही अनिवार्यता उन अंतःप्रेरणाओं की है जिनसे चरित-नायक का विशिष्ट व्यक्तित्व निर्मित होता है। चरित-नायक के चयन में यह दृष्टि महत्वपूर्ण रहती है कि चरित-नायक कोई विशिष्ट व्यक्ति हो जिसका चरित्र समाज के लिए प्रेरक एवं व्यक्तित्व आकर्षक हो लेकिन आधुनिक युग में यह भावना भी दृढ़ हुई है कि अति-सामान्य जन-साधारण भी जीवनी का चरित-नायक हो सकता है। ऐसे लोगों की जीवनी तत्कालीन समाज व्यवस्था

तथा उसमें निहित मानव मूल्यों की स्थिति को अनावृत्त करने वाली होती है। सामग्री संकलन जीवनी लेखन का एक महत्वपूर्ण चरण है। एक प्रामाणिक जीवनी के लिए जीवनी लेखक विभिन्न स्रोतों - जैसे कि चरितनायक की आत्मकथा, डायरी, पत्र, उसके द्वारा लिखा गया साहित्य, उसकी वक्तृताएँ आदि से सामग्री संकलन करता है। तथ्य संकलन जहाँ जीवनी को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाता है, वहीं अनुभूति और कल्पना का प्रयोग चरितनायक के चरित्रांकन में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। चरितनायक के भावलोक और विचार-क्षेत्र को साकार करने के लिए जीवनीकार तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में चरितनायक के व्यक्तित्व को उभारता है। एक सजीव जीवनी के लिए लेखक की दृष्टि का तटस्थ एवं निष्पक्षतापूर्ण होना परमावश्यक है।

जीवनी की परंपरा साहित्य के आदिकाल से ही चली आई है। आदिकालीन वीर काव्य, भक्तिकाल में 'परचई साहित्य' एवं 'वार्ता साहित्य' क्रमशः राजा-महाराजाओं एवं भक्तों के जीवन चरित पर ही आधारित है। उत्तर-मध्यकाल में भी चरित लेखन की परंपरा बनी रही लेकिन यह समस्त साहित्य जीवनी की पूर्व परंपरा के रूप में ही महत्व रखता है अन्यथा इसमें तथ्यपरकंता एवं ऐतिहासिकता का सर्वथा अभाव रहा। आधुनिक युग में भारतेंदु, मुंशी देवी प्रसाद, कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने जीवनी रचना को अधिक प्रामाणिक एवं सरस बनाया। स्वातंत्र्योत्तर युग में ही जीवनी साहित्य अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचा। चरित नायक के प्रति श्रद्धापरक दृष्टिकोण के स्थान पर रचनाकारों ने तटस्थ दृष्टि से अपने चरित-नायक के गुण-दोषमय चरित्र का सजीव अंकन किया।

अमृतराय द्वारा लिखित जीवनी **प्रेमचंद : कलम का सिपाही** जीवनी साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। प्रेमचंद जैसे युग-प्रवर्तक साहित्य सर्जक वैचारिक भावात्मक विकास को लेखक ने तत्कालीन परिवेश के संदर्भ में ही प्रस्तुत किया है। युग जीवन के साथ-साथ पारिवारिक प्रसंगों, मित्रों को लिखे गए पत्रों आदि के हवाल से अमृतराय ने प्रेमचंद के अंतःसंघर्षों, मानसिक उथल-पुथल, आशाओं-निराशाओं को समग्र अभिव्यक्ति दी है। सामग्री संकलन के लिए लेखक को विशेष प्रयास करने पड़े हैं।

अध्याय 32 प्रस्तुत जीवनी की प्रातिनिधिक झलक प्रस्तुत करने में सक्षम है। इसमें गार्हस्थिक प्रसंगों के साथ-साथ युग के ज्वलंत प्रश्नों जैसे साम्प्रदायिकता, पूँजीवाद आदि पर प्रेमचंद के प्रगतिशील विचारों की झलक मिलती है। साथ ही, साहित्यिक जीवन के विवादों और साहित्य में अर्थ के हस्तक्षेप से जो 'साहित्यिक गुंडापन' पैदा हुआ प्रेमचंद उसका कड़ा विरोध करते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत अध्याय प्रेमचंद के युगद्रष्टा, जीवट भरे व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में समर्थ है। प्रतिकूल परिस्थितियों में उनकी संघर्षशील जिजीविषा उन्हें डटे रहकर जूझने को बाध्य करती है।

अमृतराय ने प्रेमचंद की संपादकीय टिप्पणियों, पत्रों तथा सृजनात्मक साहित्य से लंबे-लंबे उद्धरण देते हुए उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व को सजीव किया है। बीच-बीच में लेखक की अपनी तटस्थ एवं निष्पक्ष टिप्पणियाँ हैं। इस शैली से जहाँ एक ओर संवेदनात्मक घनत्व आया है वहीं शिल्प की विशिष्टता भी स्थापित हुई है। शिल्प के स्तर पर अमृतराय की शैली प्रौढ़ एवं प्रभावाभिव्यंजक है। उनके चरित्र चित्रण की पद्धति सजीव एवं आकर्षक है। उसमें कथात्मकता की सरसता तथा प्रवाह है।

भाषा पर अमृतराय का अद्वितीय अधिकार है। वे शब्दों के धनी हैं और उनके वाक्य-विन्यास में एक कसावट है। उनमें कम शब्दों में अधिक कहने की सामर्थ्य है।

निष्कर्षतः यह जीवनी हिंदी साहित्य को अमृतराय की एक विशिष्ट देन है।

अभ्यास

1. 'हिंदी जीवनी साहित्य में **कलम का सिपाही** एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
2. '**कलम का सिपाही** में व्यक्ति और युग का अनूठा संयोजन हुआ है।' इस कथन के आलोक में प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन कीजिए।
3. **कलम का सिपाही** की शिल्पगत विशेषताओं का पठित अंश के आधार पर विवेचन कीजिए।

इकाई 23 आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 आत्मकथा के रूप में **क्या भूलूँ क्या याद करूँ**
23.3 **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की अंतर्वस्तु
23.4 **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक के विचार
23.5 **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का संरचना शिल्प
23.6 **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का महत्व और उपयोगिता
23.7 सारांश

23.0 उद्देश्य

गद्य की महत्वपूर्ण विधा आत्मकथा पर पाठ्यक्रम की इस तेईसवीं इकाई में आप हरिवंश राय बच्चन की चार भागों में स्वतंत्र रूप से प्रकाशित आत्मकथा के प्रथम भाग **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आत्मकथात्मक कृति के रूप में क्या **भूलूँ क्या याद करूँ** को पढ़ने की ज़रूरत और महत्व को समझ पाएँगे,
- **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता पाएँगे,
- **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में व्यक्त लेखक के विचार को समझ पाएँगे, और
- आत्मकथा की परंपरा में **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** के महत्व और उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

'नाटक और अन्य गद्य विधाएँ' नामक पाठ्यक्रम के पाँचवें खंड की यह अंतिम इकाई है। इससे पहले आप रेखाचित्र, संस्मरण और जीवनी विधाओं का अध्ययन कर चुके हैं। हिंदी गद्य की नवीन विधाओं में आत्मकथा का महत्वपूर्ण स्थान है। पाठ्यक्रम की इस तेईसवीं इकाई में आप हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** के एक अंश का अध्ययन करने जा रहे हैं।

हिंदी आत्मकथा के इतिहास में **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का विशेष महत्व है। साहित्य में बच्चन की पहचान 'मधुशाला' के कवि के रूप में अधिक है और इस बात की बार-बार चर्चा होती है कि इसकी रचना की प्रेरणा उन्हें उमर खैय्याम की रूबाइयों के साथ-साथ वास्तविक जीवन की उन घटनाओं से भी मिली थी जिसे उन्होंने भोगा और महसूस किया था। वे घटनाएँ क्या हैं और उनका लेखक के जीवन से क्या संबंध है - इसकी जानकारी इस आत्मकथा के सिवाय किसी अन्य कृति में प्राप्त नहीं हो सकती। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में बच्चन ने निःसंकोच भाव से अपने जीवन की उन घटनाओं और प्रसंगों का उल्लेख किया है जिनका गहरा संबंध उनके लेखन और व्यक्तित्व के विकास से रहा है। इसमें उनकी जाति, परिवार, शिक्षा, परिवेश और मित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस अध्ययन मे हम देखेंगे कि लेखक किस प्रकार अपनी निजता को सार्वजनिक करता है और चेतन-अचेतन अवस्था में अपने मस्तिष्क के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का तटस्थ होकर आकलन करता है।

आत्मकथा लेखन की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है। बिना तटस्थता, आत्मालोचन और जीवन की कथा को युगीन संदर्भों से जोड़े - कोई भी आत्मकथा प्रभावशाली नहीं हो सकती है। इनके अतिरिक्त लेखन की विशिष्ट शैली आत्मकथा को पठनीय बनाती है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की संरचना पर विचार करते हुए हम इसकी लेखन शैली का आकलन भी करेंगे। यहां हम यह भी देखेंगे कि आत्मकथा की रचना में लेखक ने जातीय, पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों का उपयोग किस प्रकार किया है।

किसी भी कृति की रचना में लेखक के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह एक तरह से लेखक की सामाजिक दृष्टि और रचना के स्थायी होने का प्रमाण भी होती है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, लेखन आदि से जुड़े अनेक मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया है। इस अध्ययन में हम देखेंगे कि किस प्रकार ये विचार आत्मकथा में उन प्रसंगों और घटनाओं को स्थायी महत्व का बना देते हैं, जिसे लेखक महत्वपूर्ण मानता है तथा पाठकों का ध्यान उस और आकर्षित करना चाहता है।

वस्तुतः साहित्य की परंपरा और मनुष्य समाज की जिंदगी में प्रत्येक रचना की अपनी एक अलग महत्ता और उपयोगिता होती है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की चर्चा करते हुए हम इस बात पर विचार करेंगे कि आत्मकथा और हिंदी की परंपरा में इस कृति का क्या महत्व साहित्य रहा है।

ये कुछ ऐसे प्रसंग और बिंदु है जिन पर हम इस इकाई में अलग-अलग विचार करेंगे।

23.2 आत्मकथा के रूप में 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'

क्या भूलूँ क्या याद करूँ हिंदी की सर्वाधिक चर्चित आत्मकथाओं में से एक है। कृति के शीर्षक से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक के निजी और सार्वजनिक जीवन में ऐसी घटनाएँ घटित हुई होगी, जिनका उल्लेख वह यहां करना चाहता है। पर किनका करें, किनका नहीं - तय नहीं कर पाता है। बावजूद इसके, असमंजस की स्थिति से वह मुक्त होता है और इस कृति में उन घटनाओं, प्रसंगों और स्थितियों का उल्लेख करता है, जिनका गहरा संबंध उसकी प्रारंभिक ज़िंदगी से रहा है और एक समय जिसने उसके जीवन की दशा और दिशा - दोनों को पूरी तरह से बदल दिया था। बच्चन के जिस कवि व्यक्तित्व से आज पूरा हिंदी संसार परिचित है - उसका स्रोत इस आत्मकथात्मक कृति में आसानी से ढूँढ़ा जा सकता है। इसलिए इस आत्मकथात्मक कृति को पढ़ने का अर्थ एक रचना का आस्वादन करना ही नहीं है, बल्कि उन मार्मिक स्थितियों से गुजरना भी है जिसके कारण बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है और 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'निशा निमंत्रण' जैसी काव्य-कतियाँ रची जाती हैं। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** स्पष्टतः बतलाती है कि इसे पढ़ने का अर्थ लेखक के बचपन से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक के जीवन क्रम को जानना ही नहीं, अपितु उस समय के समाज को समझना भी है, जब भारत में जातिवादी और धार्मिक संस्थाएँ मज़बूत थीं, सामाजिक ज़िंदगी में उनका बोलबाला था और तत्कालीन ब्रिटिश साम्रज्यवाद उनके सहयोग से शासन और दमन के रास्ते पर बढ़ रहा था। इन बातों का संकेत जगह-जगह इस कृति में मिल जाएगा।

वस्तुतः प्रत्येक बड़ी रचना का अपना एक सच होता है। अधिकांशतः इस सत्य का दर्शन रचना की अंतर्वस्तु में निहित होता है। **'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'** को पढ़ते हुए बार-बार इस बात का एहसास होता है कि बच्चन अपने जीवन की जिन सच्चाइयों से पाठक समाज को परिचित कराना चाहते हैं, वे उनकी ज़रूर है पर उनका गहरा संबंध तत्कालीन युगीन परिवेश से रहा है तथा वे सच्चाइयाँ ऐसी नहीं हैं कि व्यर्थ का प्रचार करें। नायब साहब, राधा बुआ, बाबा

भोलानाथ, पिता प्रतापनायण, पत्नी श्यामा, मित्र कर्कल चंपा-प्रकाशों - श्रीकृष्ण आदि की ज़िंदगी की सच्चाइयों का गहरा संबंध लेखक के जीवन और युगीन परिवेश से रहा है, पर उनको लेकर वह आत्मालोचन अधिक करता है, प्रचार कम। इतना ही नहीं उनको लेकर उसके अंदर भावुकता नहीं है बल्कि, वह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के कुछ मार्मिक प्रसंग होते हैं, जिन्हें लेकर वे अपनी ज़िंदगी की एक दिशा तय कर लेते हैं। इस आत्मकथा को पढ़ते हुए इसके पात्रों की ज़िंदगी में आए निर्णायक क्षण से 'सच' को समझा जा सकता है। जिस 'संयम के विस्फोट' की चर्चा लेखक बार-बार इस कृति में करता है, वह उसकी ज़िंदगी की एक सच्चाई है जिसे वह पहली पत्नी श्यामा की बीमारी के चलते शारीरिक स्तर पर दूर रहने के कारण प्राप्त करता है। अगर बच्चन ने यह आत्मकथा नहीं लिखी होती तो शायद ही हम उनके जीवन की इस सच्चाई से परिचित हो पाते और 'मधुशाला' में व्यक्त प्रेम और विरह का रहस्य समझ पाते। पहले संस्करण की भूमिका में उन्होंने लिखा भी है कि "मुझे कई वर्षों से लग रहा था कि जब तक मैं अपने अंतर में निरंतर उठती स्मृतियों को चित्रित न कर डालूँगा तब तक मेरा मन शांत नहीं होगा।"

वास्तव में **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** को पढ़ने का अर्थ है 'मधुशाला' के कवि हरिवंशराय बच्चन की प्रारंभिक ज़िंदगी को नजदीक से देखना, उसे महसूस करना, समझना और उस भारतीय समय तथा समाज को जानना, जब जातीय और धार्मिक संस्थाओं का विकास जोरों पर था एवं स्वाधीनता आंदोलन गांधीवाद तथा क्रांतिकारी गतिविधियों के बीच से नया मार्ग ढूंढ़ रहा था। यद्यपि इस कृति में इनका व्यापक वर्णन नहीं है और न ही विधा तथा लेखक की जिंदगी को देखते हुए उसकी ज़रूरत भी है, पर जगह-गह अनेक ऐसे संकेत हैं जो इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

23.3 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' की अंतर्वस्तु

कृति को महत्वपूर्ण बनाने में विषयवस्तु की विशेष भूमिका होती है। एक तरह से यह रचना में व्यक्त जीवन और लेखक के अनुभव तथा दृष्टि की वास्तविकता एवं व्यापकता का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है। आत्मकथा में यह विषयवस्तु लेखक की निजी ज़िंदगी और अनुभव पर आकर केंद्रित हो जाती है, पर उसका गहरा संबंध उसके चरित्र के विकास से संबंधित स्थितियों एवं घटनाओं से होता है। **'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'** के प्रारंभ में बच्चन ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक मानतेन की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "मैं स्वयं अपनी पुस्तक का विषय हूँ, मैं अपने गुण-दोष जग-जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, पर ऐसी स्वाभाविक शैली में जो लोक-शील से मर्यादित हो।"

स्पष्टतः मानतेन की इन पंक्तियों के माध्यम से बच्चन ने अपनी पुस्तक की विषयवस्तु को जाहिर कर दिया है। पर इस प्रथम भाग में वे अपने संपूर्ण जीवन की चर्चा न करके केवल कायस्थ जाति, परिवार की परंपरा, जन्म, शिक्षा और जीवन संघर्ष से लेकर प्रथम पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की घटनाओं का चित्रण करते हैं। बाद का जीवन उन्होंने आत्मकथा के अन्य भागों में अभिव्यक्त किया है। पर हमारे लिए यहाँ यह देखना महत्वपूर्ण होगा कि अपने जीवन की इस कथा को लेखक ने रचना की अंतर्वस्तु के रूप में किस प्रयोजन और आकांक्षा के साथ विकसित किया है। उसकी अभिव्यक्ति का स्वर और संदर्भ किस प्रकार का है तथा चेतना और विचार के स्तर पर वह किस तरह पाठकों के सामने अपने आपको रखते हैं।

भारतीय समाज में जाति की भूमिका के नकारात्मक पहलुओं को लेखक ने कई प्रसंगों द्वारा उजागर किया है। इसी में से एक घटना पठित अंश में भी है। कायस्थ विधवा स्त्री जिसे अपने जीवन यापन क लिए विजातीय व्यक्ति से संबंध जोड़ना पड़ा, उसे अपनी बेटी के विवाह पर कायस्थों का बहिष्कार भी झेलना पड़ा। लेकिन बच्चन और उन जैसे प्रगतिशील युवक उस

विवाह में शामिल होते हैं। यह और बात है कि इस कारण खुद लेखक के परिवार को बहिष्कार का सामना करना पड़ता है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने अपने जन्म और परिवार से जुड़े उन प्रसंगों और घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जो उसके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति के विकास और उसके सर्जनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में किस प्रकार परिवार और उसकी परंपराएँ सार्थक भूमिका निभाती है, इसे विवेच्य आत्मकथा को पढ़कर समझा जा सकता है।

वास्तव में प्रत्येक परिवार की कुछ निजी विशेषताएँ और परंपराएँ होती हैं जिनका गहरा असर उनकी आने वाली संतानों पर पड़ता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बच्चन के रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण, विकास और समाजीकरण में उनके परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। खासकर परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व, जीवन-शैली और धार्मिक मान्यताओं तथा परंपराओं का गहरा असर उनके बालमन पर पड़ा है और इसी अवस्था में उनकी मानसिकता का निर्माण होता है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** को पढ़ते हुए बच्चन के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की इस भूमिका के महत्व को स्पष्टतः देखा जा सकता है। कई बार तो लगता है कि उनके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में भी समाज और राष्ट्र से अधिक उनके परिवार और उसकी परंपराओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यद्यपि इसमें मित्र भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं, पर परिवार उसे व्यवस्थित करता है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा और संबल भी देता है। बच्चन के जीवन में शिक्षकों और शिक्षा संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जिनका उल्लेख उन्होंने विस्तार से किया है। पठित अंश में आपने उन शिक्षा संस्थाओं के बारे में पढ़ा है जिसमें अध्यापक के रूप में उन्होंने काम किया था।

हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है अस्तित्व रक्षा के लिए किया गया प्रयास। यह प्रयास एक तरफ जहाँ युगीन परिवेश को पूरी तल्खी के साथ चित्रित करता है, वहाँ दूसरी तरफ यह भी दिखलाता है कि किस प्रकार सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों से आत्मकथा का नायक टकराता है, उनसे जूझता है और फिर मुक्त होकर आगे बढ़ जाता है। इसमें उसके परिवार की वे सारी घटनाएँ और परंपराएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जो उसे नैतिक रूप से मज़बूत बनाती हैं और विपरीत परिस्थितियों में सही काम करने की प्रेरणा देती हैं। खासकर पढ़ाई और बाद में पत्नी तथा बीमारी के दौरान किया गया उसका आर्थिक संघर्ष अत्यंत दारुण है। सुबह-शाम ट्यूशन से लेकर वह 'चाँद' पत्रिका में नौकरी जहाँ से महीने भर बाद बिना तनख्वाह दिए बाहर निकाल दिया जाता है। स्कूल अध्यापकी में भी व्यवस्था की बेईमानी का शिकार होता है और पच्चीस रुपये की जगह पैंसठ पर हस्ताक्षर करता है। यह काम देश भक्ति के नाम पर कराया जाता है। तत्कालीन शिक्षा संस्थानों में इस प्रकार के भ्रष्टाचार किस तरह शैक्षणिक माहौल और शिक्षकों को शिक्षण के प्रति उदासीन बनाने में सक्रिय भूमिका निभाते थे, इसका अंदाज़ा इन प्रसंगों से लगाया जा सकता है।

लेखक ने अपने लेखन के आरंभिक प्रयासों का भी मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया है। अपनी पहली पुस्तक का प्रकाशन उसके लिए कितना आह्लादकारी था, यह हम पढ़कर महसूस कर सकते हैं। यहाँ बच्चन ने कहानीकार और कवि में से चुनने के प्रसग का भी वर्णन किया है। इस संदर्भ में बच्चन का यह कथन द्रष्टव्य है : 'जीवन की ऐसी आकस्मिक घटनाएँ ही वास्तव में जीवन को दिशा देती हैं, और जिसे हम 'नियति' का गंभीर-सा नाम देते हैं वह शायद बहुत नगण्य-सी लगने वाली घटनाओं से अपने बड़े-बड़े लक्ष्य प्राप्त करती रहती है।' यद्यपि 1933 में सुषमा निकुंज प्रकाशन द्वारा खुद 'मधुशाला' के प्रकाशन के बाद घर की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार होता है, पर उन दिनों के आर्थिक संघर्ष की भयानकता का अंदाजा निम्नलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है : 'रात को खाना बनाने के बाद पढ़ाने जाता और ग्यारह बजे

रात के करीब लौटता - कीटगंज से मुट्ठीगंज तक की सुनसान सड़कों पर 'खचर, 'खचर' साइकिल चलाता, जाड़ों में ठिठुरता। उन दिनों की अपनी मेहनत-मशक्कत, अपने मन के तनाव, दिमाग़ के खिंचाव की याद करता हूँ तो लगता है कि मैं कोई दैत्य ही रहा हूँगा जो यह सब झेलता-ठेलता हूँगा।"

बच्चन की आत्मकथा में संघर्ष का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है देश की ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति की आकांक्षा और इसके लिए व्यक्तिगत तथा रचनात्मक स्तर पर किया गया प्रयास। इस कृति में तत्कालीन भारत की जिन राजनीतिक गतिविधियों का संकेत और चित्रण मिलता है उनमें भारतीयों पर अंग्रेज़ों का अत्याचार, गदर में बाबा भोलानाथ के घायल होने की चर्चा, गाँधी और उनके राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, क्रांतिकारियों के साथ सहयोग, प्रथम विश्व-युद्ध का उल्लेख, बाल गंगाधर तिलक की चर्चा आदि प्रमुख है। देश के राजनीतिक परिवेश में हो रहे इन संघर्षों से लेखक किसी-न-किसी रूप में अपने आपको जोड़ता है और मानता है कि इनमें सक्रिय हिस्सेदारी न निभाने के बावजूद उसकी उपस्थिति किसी-न-किसी रूप में महत्वपूर्ण रही है।

गांधीजी की उपस्थिति में स्वरचित गीत "सर जाए तो जाए, पर हिंद आजादी पाए" का हजारों की उपस्थिति में श्यामा कुमारी नेहरू द्वारा लोगों से गँवाना आदि इसी स्वाधीनता आंदोलन के हिस्से हैं। गांधी जी के प्रभाव में आकर स्वाधीनता आंदोलन में अपनी भागीदारी की चर्चा करते हुए आत्मकथाकार ने लिखा है कि "मैं आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की स्थिति में न था, जुलूसों में नारे लगाता, सभाओं में शामिल होता। घर में चर्खा-चलाता, जमुना पार गाँवों में जाकर व्याख्यान देता। कुछ रचनात्मक कार्य करने को भी मैंने सोचा- हम खद्दर का प्रचार करेंगे।" इसी प्रकार श्रीकृष्ण और उसके सहयोगियों तथा अन्य क्रांतिकारियों में सुखदेवराज, चंद्रशेखर आजाद, दुर्गा भाभी, प्रकाशवती पाल आदि को लेखक द्वारा अपने घर में आश्रय देना - उसके राजनीतिक संघर्ष का ही एक हिस्सा हे। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष के ये कुछ ऐसे चित्र हैं जिनका मार्मिक चित्रण इस कृति में दिखलाई पड़ता है।

किसी भी मनुष्य के संघर्ष और निर्माण में कुछ लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में आत्मकथाकार ने परिवार के अलावा अनेक ऐसे लोगों का उल्लेख और वर्णन किया है जो उसके संघर्ष, निर्माण और विकास के साथी और सहयोगी रहे हैं। इन व्यक्तियों में एक तरफ जहाँ उनके मित्र, अध्यापक और रचनाकार साथी रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ ऐसे व्यक्ति भी रहे हैं जिनके नकारात्मक और सकारात्मक व्यवहार के कारण लेखक को अपने जीवन की दिशा तय करने में मदद मिलती है।

यद्यपि श्यामा लेखक की पत्नी है, परंतु इस कृति में वह लेखक के संघर्ष और निर्माण में जिस तरह की भूमिका निभाती है वह कई मायने में किसी सच्चे मित्र से कम नहीं है। लेखक उसे 'ज्वॉय' कहता है और चह उसे 'सफरिंग'। एक मित्र रूप में उसके योगदान की चर्चा करते हुए वह कहता है कि "सबसे अधिक अपने इच्छाबल से उसने मुझे अपने रास्ते पर न ठहरने दिया, न पीछे फिरने दिया - 'राह पकड़ तू चला चल पा जाएगा मधुशाला।" जिस धैर्य और लगन से श्यामा उसके रचनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में मदद करती है, वह अद्‌भुत है। विपरीत परिस्थितियों में भी वह धैर्य नहीं खोती है और हमेशा लेखक की हिम्मत बढ़ाती है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में लेखक ने खुलकर भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा और दिशा के बारे में अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया है। इस कृति में अनेक जगह वह परिवार और समाज के प्रतिबंधों को तोड़ते हुए विषम परिस्थितियों में स्त्रियों की मदद करता है चाहे वह चंपा हो या प्रकाशों यद्यपि इन स्त्रियों के प्रति लेखक के अंदर एक भावुकता-भरा आकर्षण है, पर इससे वह मुक्त भी जल्दी हो जाता है। वह यह भी मानता है कि आर्थिक

स्वतंत्रता, एक हद तक ही स्त्री-समाज को महत्व देता है और पुरुष के दबाव से मुक्त करता है क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो आज यूरोप में स्त्रियाँ बहुत अच्छी स्थिति में होती। पर यूरोप में भी ऐसा नहीं है। वह कहता है कि "जहाँ आर्थिक स्वतंत्रता संभव हुई है वहाँ, इसमें संदेह नहीं, एक-दूसरे से दबने की भावना दूर हो गई। पर यह केवल बाहरी और नकारात्मक पक्ष है। ... यूरोप में पति-पत्नी विच्छेद के कितने ही मामलों में आर्थिक स्वतंत्रता भी कारण बनी है।" जाहिर है लेखक स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता को उतना कारगर नहीं मानता है। तो फिर उपाय क्या है? "आदर्श प्रेम!" लेखक कहता है। यद्यपि उसके इस आदर्श प्रेम का जो स्वरूप ओर आधार है, वह अपने आप में बहुत स्पष्ट नहीं है। फिर भी वह कहता है, "नर-नारी का वह आकर्षण जो प्रेम का रूप लेता है एक-दूसरे के किसी अभाव की पूर्ति करता है। दोनों को ही अपने-अपने अहं को किसी-न-किसी रूप में पोषित करने और किसी-न-किसी रूप में मिटाने की आवश्यकता होती है। जो दंपत्ति कभी एक-दूसरे के ऊपर उठकर, कभी एक दूसरे के नीचे झुककर इस आवश्यकता की पूर्ति करते रहते हैं, वे अपने संतुलित संबंध का रहस्य जान लेते हैं।" जाहिर है एक दूसरे की भावनाओं का आदर करके ही स्त्री और पुरुष सार्थक जिंदगी जी सकते हैं। इसका सबसे सरल माध्यम है 'प्रेम', जिसकी वकालत यह कृति बार-बार करती है। और यह 'प्रेम' मित्रता से ही प्राप्त हो सकता है। इसलिए बच्चन बार-बार इस कृति में स्त्री के साथ एक मित्र की तरह व्यवहार करने पर बल देते हैं। बुजुर्ग और विधवा स्त्रियों का सम्मान करते हैं।

23.4 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में लेखक के विचार

रचना अथवा जीवन में विचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कई बार यह रचना अथवा जीवन के प्रति हमारी समझ का विकास ही नहीं करता है, बल्कि उसे निर्धारित भी करने लगते हैं। किसी कृति के प्रासंगिक और कालजयी होने में यह विचार मुख्य भूमिका निभाते हैं। कृति में व्यक्त विचार से ही हमें पता चलता है कि व्यक्ति और समाज के बारे में लेखक की समझ क्या है? सामाजिक जीवन में धर्म और दर्शन की भूमिका को लेकर वह क्या सोचता है? समय-समय पर समाज, राजनीति और देश की आर्थिक समस्याओं पर हो रहे राष्ट्र-व्यापी चिंतन से वह अपने आपको किस रूप में जोड़ता है और उनके प्रति किस प्रकार का नज़रिया अपनाता है? **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में हरिवंश राय बच्चन ने जगह-जगह व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति, रचना और लेखन के संबंध में अपने विचारों को व्यक्त किया है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में आत्मकथाकार ने व्यक्ति और तत्कालीन भारतीय समाज तथा राजनीति एव उनकी विकास की प्रक्रिया को लेकर अनेक टिप्पणियाँ की है जो उपर्युक्त संदर्भ में उसके दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। खासकर सामाजिक विकास की प्रक्रिया और विभिन्न तरह के समाजों के आपसी संबंध तथा उसमें व्यक्ति की भूमिका को लेकर व्यक्त किए गए उसके विचार भारतीय समाज के हाशिये पर जिंदगी व्यतीत कर रहे लोगों से हमारा परिचय कराते हैं। उदाहरण के लिए समाज में सेवा के कार्य से जुड़े नाई, बारी, कहार आदि को 'परजा' (प्रजा) कहने को भारतीय समाज की सामंती मानसिकता और व्यवस्था से जोड़ते हुए वह लिखता है कि "सामंती समाज बहुत से छोटे-छोटे सामंतों से निर्मित होता है, यहाँ तक कि हर संपन्न परिवार एक प्रकार का राजपरिवार हो जाता है और उसके ऊपर पलने वाले लोग उसकी प्रजा बने रहते हैं, और उसकी विपन्नता में भी उससे चिपके रहते हैं, उससे कुछ प्राप्त करने की आशा करते रहते हैं।"

गरीबों की यह नियति है कि वे अपनी जिंदगी के लिए संपन्न वर्गों पर निर्भर रहे। भारतीय समाज में यह स्थिति इसलिए देखने को मिलती है कि औपनिवेशिक मानसिकता के गुलाम रहने के कारण अभी हमारा सामंती ढाँचा पूरी तरह से टूट नहीं पाया था, थोड़ा बदलाव जरूर आया। समाज में इस बदलाव के निर्माण और विकास की भी अनेक अवस्थाएँ रही हैं। इसमें

प्रत्येक जाति, समुदाय और धर्म नें कुछ विशिष्ट परंपराएँ बनायीं, जिसे मानना बाद के समाज के लिए अनिवार्य होता गया।

इसी प्रकार लेखक ने भारतीय समाज में जाति-प्रथा और छुआ-छूत के कारण होने वाले दुष्परिणामों के बारे में अनेक जगह अपनी राय प्रकट की है तथा उसे तोड़ने का प्रयास भी। पर ऐसे विचार और प्रसंग इस कृति में कम है क्योंकि कृति का अधिकांश हिस्सा लेखक ने अपने व्यक्तिगत और रचनात्मक संघर्ष को लेकर विकसित किया है। बावजूद इन सबके, लेखक ने खुलकर इस कृति में स्त्री-पुरुष के संबंध, स्त्रियों का जीवन और उनका चरित्र, मनुष्य की वेदना और उसका अहं, मुहल्ले की सामाजिक संरचना, तत्कालीन राजनीतिक परिवेश आदि पर अपने विचारों को प्रकट किया है। इसी प्रकार मानवीय संबंध के विकास में "वेदना" और "अहं" की भूमिका की चर्चा करते हुए वह लिखता है कि "वेदना के बिना मनुष्य का अहं नहीं टूटता और अहं के टूटे बिना एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के हृदय तक पहुँच नहीं होती, सेतु नहीं बनता।" (पृ. 192) जाहिर है व्यक्ति और समाज के संबंध में लेखक के ये विचार मानवीय अधिक हैं। वह विचार और दर्शन की अपेक्षा व्यक्ति और समाज के संबंधों के विकास में मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व देता है तथा यही उसके विचार को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

यद्यपि **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** एक ऐसे साहित्यकार की आत्मकथा है जो लंबे समय तक परिवार की समस्याओं से जूझता रहता है। इसीलिए इसमें उस तरह की राजनीतिक चेतना नहीं है जैसा कि गांधी जी या अन्य लेखकों की आत्मकथाओं में है। फिर भी तत्कालीन राजनीतिक परिवेश पर लेखक टिप्पणी करता है, राजनीतिज्ञों के बारे में अपनी राय जाहिर करता है और स्वदेशी तथा गांधी के अन्य आंदोलनों का समर्थन करता है। पर उसके राजनीतिक विचारों में भावुकता की मात्रा थोड़ी अधिक है तथा कविता की तरह राजनीतिक स्थितियों पर विचार करता है, उदाहरण के लिए गांधी जी की डांडी यात्रा के समय की राजनीतिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए वह लिखता है :

"मैरी एम.ए. प्रीवियस की परीक्षा से पहले ही गांधी जी की डांडी यात्रा आरंभ हो गई थी और उनके प्रति पग से देश में राष्ट्रीय जागरण और जोश जोर मारने लगा। बेमन से मैंने परीक्षा दे दी, पास भी हो गया। पर जुलाई में जब युनिवर्सिटी खुली तो मैंने पढ़ाई छोड़ दी कुछ पारिवारिक चिंताओं और कुछ राजनीतिक हलचलों के कारण मेरा मन पढ़ने की तरफ से उचट गया था। मैं आंदोलन में सक्रिय भाग लेने की स्थिति में न था, जुलूसों में नारे लगाता, सभाओं में शामिल होता। घर में चर्खा चलाता, जमुना पार गाँवों में जाकर व्याख्यान देता।" इस अंश से राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति बच्चन के दृष्टिकोण को आसानी से समझा जा सकता है। देश भक्ति के गीत लिखना, खद्दर बेचना, क्रांतिवीरों को अपने घर में आश्रय देना और आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठने की बजाए एम.ए. करना उन पर राष्ट्रीय विचारों के प्रभाव का ही परिणाम था।

धर्म और दर्शन संबधी विचार

जीवन में धर्म और दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। खासकर भारतीय जीवन को निर्धारित करने में धर्म और दर्शन ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक ने मुख्यतः हिंदू धर्म की सामाजिक व्यवस्था से जुड़े अनेक पक्षों पर विचार किया है और इसी क्रम में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि दार्शनिक विषयों पर खुलकर अपनी राय प्रकट की है।

लेखक ने हिंदू समाज में जाति-व्यवस्था, छुआ-छूत दीक्षा, शिखा-केश आदि की परंपरा को धर्म से जोड़ते हुए खुलकर इनका विरोध किया है। वह मानता है कि जाति व्यवस्था और छुआ-छूत का सबसे बड़ा कारण हिंदू धर्म और उसकी वर्णव्यवस्था है जो मठ एवं मंदिरों के कारण समाज में व्याप्त रही है।

क्या भूलूँ क्या याद करूँ में जन्म, मृत्यु, आत्महत्या आदि जैसे मुद्दों पर लेखक ने एक दार्शनिक की तरह विचार किया है। यद्यपि 'आत्मा' को लेकर उठे प्रश्न का उत्तर पाने में वह अपने आपको असफल मानता है पर इस सत्य को स्वीकार करता है कि किसी की मृत्यु से दुनिया नहीं बदल जाती है बल्कि वह यथावत् चलती रहती है : "पर दुनिया, दुनिया है। दुनिया के लिए कोई अनिवार्य नहीं। इधर लाश उठती है, उधर दुनिया के काम यथापूर्व होने लगते हैं।" यह सच भी है। क्योंकि मरने के बाद आत्मा की परिणति कहाँ और किस रूप में होती है, इसका सही उत्तर आज तक हमारे पास नहीं है। लेकिन जीवित शरीर का सच सबके सामने होता है। लेखक कहता है, "शरीर रहने तक मनुष्य को क्या-क्या सहना पड़ता है। शरीर छूटा कि सारे दुःख-दर्द, चिंताएँ-व्यथाएँ, शोक-संताप विलुप्त!" पर क्या आत्महत्या इन कष्टों से सहज मुक्ति का उपाय है? लेखक मानता है नहीं! क्योंकि आत्महत्या के बारे में "... जो सोचता है, वह मेरी दृष्टि में निरात्मा है।" निरात्मा यानी कि जिसके अंदर सोचने, समझने और महसूस करने की ताकत खत्म हो गयी हो! जो जीवन की चुनौतियों से भाग रहा हो! और ऐसा मनुष्य पौरुषवान नहीं हो सकता है।

वस्तुतः धर्म और दर्शन से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर लेखक के अंदर उठे इन विचारों का गहरा संबंध उसकी अपनी जिंदगी से रहा है। इसलिए कई जगह उसके विचार वैयक्तिक लगते हैं। पर, महत्वपूर्ण बात यह है कि इन वैचारिक प्रश्नों से वह जूझता है, भागता नहीं!

रचना और रचनाकार संबंधी विचार

क्या भूलूँ क्या याद करूँ एक साहित्यिक की आत्मकथा है। इसलिए इस कृति में बच्चन के विचारों की सबसे अधिक प्रखरता वहाँ दिखलाई पड़ती है जब वह रचना और लेखक से जुड़े प्रश्नों पर विचार करता है। यद्यपि इन विचारों का भी गहरा संबंध उसके अपने लेखन और अनुभव से अधिक है और कहीं-कहीं नितांत व्यक्तिगत भी। पर लेखक की मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता उसके विचारों को ग्राह्य बना देती है। उदाहरण के लिए वह अपने कवि बनने के कारण की चर्चा करते हुए लिखता है कि "संयम का कहीं-न-कहीं विस्फोट होता है। यह मैं बड़ी सच्चाई के साथ कहता हूँ कि उसका अधिकतम विस्फोट निश्चय ही मेरे काव्य रूप में हुआ।" जाहिर है 'मधुशाला' के सृजन में अपने जिस 'संयम के विस्फोट' की चर्चा लेखक करता है, वह उसकी पत्नी श्यामा को लेकर है। पर सृजन में संयम एक हद तक भूमिका निभाता है। लेकिन इसके विकास की प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है। शायद इसीलिए लेखक मानता है कि "शब्द-कविता का, वास्तव में बहुत-से माध्यमों में से केवल एक माध्यम है।" और बच्चन इसके समर्थन में किसी अंग्रेजी पंक्ति का अनुवाद प्रस्तुत कर देते हैं : "कविता लिखने का उतना विषय नहीं, जितना जीने का और कविता जीने, जीने का सबसे दुःसाध्य रूप है। कबीर भी इसे शीश काटना और फिर उस पर पाँव धरने की प्रक्रिया से जोड़ते हैं जिसकी चर्चा करते हुए लेखक 'अहं' को कवि का सबसे बड़ा शत्रु घोषित करते हुए कहता है कि यह कवि की चेतना को नष्ट कर देता है। बिना इसे त्याजे लेखक बनना संभव नहीं है। क्योंकि "अहं को काटने के बाद जो चेतना शीश को उठाती है, उस पर पाँव धरती है, उसी का नाम कवि है।" और कवि करता क्या है? लेखक लिखता है कि "...कवि को हर कविता लिखते समय यह दुर्धर्ष चमत्कार करना होता है या यों कहे कि जब भी सच्चे अर्थों में कविता बनती है, कवि इसी प्रक्रिया से गुजरता है।"

स्पष्टतः लेखक की ये पंक्तियाँ सिर्फ सृजन की प्रक्रिया की तरफ संकेत नहीं करती है बल्कि यह भी बतलाती है कि एक कवि अर्थात् रचनाकार का जन्म कैसे होता है? जिन जटिल प्रक्रियाओं से गुजरकर कोई रचना किसी विधा का रूप धारण करती है उसका अपना एक अलग समाजशास्त्र होता है। यह समाजशास्त्र कहीं बाहर निर्मित नहीं होता है बल्कि उसका सृजन व्यक्ति की अंतर्चेतना में होता है। 'प्रवास की डायरी' (1979) में बच्चन ने कविता की चर्चा करते हुए लिखा है कि "कविता, गहन भावों-विचारों की या इससे अच्छा होगा यह कहना कि गहन क्षणों की सहज वाणी है या अगम अनुभूतियों की सुगम अभिव्यक्ति।" दूसरे शब्दों में

वे रचना को लेखक द्वारा 'अपनी अनुभूतिं को स्वाभाविक ढंग से' रखने की कला मानते हैं। इसलिए कि 'कला का लक्ष्य है कि जो व्यक्तिगत है, सीमित है, आत्मयोगी है, उसे सर्वमत, सार्वभौम और सार्वभोगी बना दिया जाए। (नीड़ का निर्माण फिर, संस्करण : 1980, पृ. 66)

वास्तव में हरिवंश राय बच्चन काव्य या अन्य कला को लेखक अथवा कलाकार द्वारा अपनी अनुभूतियों को समय और समाज के साथ जोड़कर सार्वजनिक रूप से प्रकट करने की चेतना मानते हैं। मुक्तिबोध इसे थोड़ा अधिक यथार्थवादी बनाते हुए उसी रचना को वास्तविक मानते हैं जो 'जीवन की चेतना से परिपूर्ण' होती है तथा जिसमें 'अपने प्रति और अपने युग के प्रति अधिक उत्तरदायित्व' की भावना होती है। अर्थात् 'अपने अंतःकरण में स्थित जीवनानुभवों को उनके संपूर्ण बाह्य संदर्भों के साथ उपस्थिति करना।' (संदर्भ : मुक्तिबोध रचनावली, भाग : पाँच, संस्करण : 1985, पृष्ठ क्रमश : 24, 199)

वस्तुतः सृजन और उसकी प्रक्रिया को बच्चन एक जटिल प्रक्रिया मानते हैं। क्योंकि इनका 'सत्य, वस्तुगत सत्य से कहीं अधिक सजीव होता है।' इसलिए वे स्पष्टतः कहते हैं कि 'जब मैं अपनी अनुभूतियों में जीता हूँ - कला के माध्यम से अनुभूतियों को जीना, शायद जीने से अधिक घनत्व से, तीव्रता से, गहराई से जीना है - तब मैं सारे संसार के लिए मर जाता हूँ, और मैं चाहता हूँ कि कोई कुछ भी ऐसा न करे जिससे मैं संसार में जीने के प्रति सचेत हो जाऊँ, जब तक कि मेरी ही समाधि न टूटे।' स्पष्टतः यहाँ बच्चन अनुभूतियों को प्रस्तुत करने के लिए दार्शनिक बेकन के जिस हालावादी स्थिति की ओर संकेत करता है, वह यह मानकर चलती है कि अनुभूति के साथ बिना गहन संबंध और स्थितियों के साथ तादात्म्य के रचना का उद्भव हो ही नहीं सकता है। यह कृतिकार पर निर्भर है कि वह रचना की व्यापकता के लिए किस हद तक अपने को कुछ समय के लिए बाह्य संसार से अलग कर लेता है।

अनुभूति, रचना-प्रक्रिया और रचनाकार के अतिरिक्त **'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'** में बच्चन ने, कला के अन्य रूपों, कल्पना और यथार्थ, जीवन और रचना में तर्क और भावुकता का द्वन्द्व, कवि का मार्ग, जनता की प्रशंसा, साहित्य में राजनीति, कविता और जीवन का संघर्ष आदि जैसे विभिन्न रचनात्मक मुद्दों और प्रश्नों पर खुलकर अपने विचार प्रकट किये हैं तथा जगह-जगह उनकी मार्मिक व्याख्या की है। ये व्यख्या और विचार - लेखक की इस कृति को महत्वपूर्ण बनाते हैं।

23.5 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का संरचना शिल्प

आत्मकथा की रचना विषयवस्तु के स्तर पर अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न होती हैं इसलिए रचनाकार एक सीमा के बाद रचना के स्वरूप को निर्मित करने के लिए स्वतंत्र होता है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की रचना में हरिवंश राय बच्चन ने इसके स्वरूप की निर्माण में अनेक प्रक्रियाएँ अपनाई हैं चाहे वह रचना में जातीय, पारिवारिक और सामाजिक संदर्भों के उपयोग की बात हो अथवा कथा के अंदर अवांतर कथाओं की संरचना का, आत्मकथा की रचना के निर्धारित मापदंडों को अपनाने की बात हो या लेखन शैली में विविधतापूर्ण प्रयोग का। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस आत्मकथा की रचना में वे कोई निश्चित पद्धति अपनाकर नहीं चले हैं बल्कि कथानक के हिसाब से रचना का स्वरूप रचा है।

वास्तव में किसी भी कृति का स्वरूप रचना के बाहर के सामाजिक यथार्थ और भीतर के यथार्थ के अंतर्संबंध से निर्धारित होता है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक स्वयं रचना का विषय है और उसने अपने जीवन की वास्तविकता और आकांक्षा को रचना की अंतर्वस्तु के रूप में चित्रित किया है। एक तरह से रचना के बाहर और भीतर का यथार्थ स्वयं उसका जीवन है। इसलिए इस कृति का स्वरूप उसके जीवन और परिवार की परंपरा से गहरे रूप में प्रभावित है।

क्या भूलूँ क्य याद करूँ की मुख्य कथा है लेखक की बचपन से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की ज़िंदगी, जिसका चित्रण उसने वर्णनात्मक शैली में किया है। कथा-संरचना के स्तर पर इस आत्मकथा को मुख्यतः तीन भागों में बांटा जा सकता है - आरंभ, मध्य और अंत। आत्मकथा के आरंभ में लेखक ने कायस्थ जाति के उद्‌भव और विकास के साथ ही उसकी कमज़ोरियों और विशषताओं का वर्णन किया है। कथा को रोचक बनाने क लिए उसने बीच-बीच में प्राचीन भारतीय ग्रंथ और लोक में प्रचलित अनेक ऐसी कथाओं का उल्लेख किया है जो इस जाति के लोगों की विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं। मध्य में आत्मकथाकार ने जन्म, परिवार की पंरपरा और उसकी स्थिति तथा शिक्षा एवं समाजीकरण में भूमिका निभाने वाले मुख्य व्यक्तियों की चर्चा है। आत्मकथा के अंत में लेखक ने युवावस्था की जिंदगी, प्रेम-प्रसंग और कठिन जीवन संघर्ष की चर्चा की है जिसमें कर्कल-चंपा, श्रीकृष्ण सूरी-प्रकाशों और श्याम से विवाह तथा उसकी बीमारी एवं मृत्यु का मार्मिक चित्रण किया है। कथा के इन तीनों भागों को रोचक और मार्मिक बनाने के लिए आत्मकथाकार ने बीच-बीच में छोटी-छोटी कथाओं की रचना की हैं, काव्य-पंक्तियों को उद्धृत किया है और यथार्थ जीवन के अनेक ऐसे प्रसंगों और व्यक्तियों के जीवन से जुड़ी घटनाओं का वर्णन किया है जो कृति को पठनीय बनाते हैं।

वास्तव में हरिवंशराय बच्चन की इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है कथा की एकरूपता और प्रस्तुत करने की अद्‌भुत शैली। इसमें उनकी जाति, परिवार, मित्र, शिक्षक, साहित्यकार आदि अनेक लोगों की कथाएँ हैं पर इन्हें पढ़ते हुए कहीं भी इस बात का अहसास नहीं होता कि पाठक अलग-अलग जीवन और प्रसंग की कथा पढ़ रहा है। इनकी आपसी एकता और विकास की प्रक्रिया में एक तार्किकता है और यह तार्किकता कथा की संरचना को प्रभावशाली बनाती है। इसीलिए बच्चन जब बीच में कोई नयी कथा शुरू करते हैं तब उसके लिए कोई भूमिका नहीं बाँधते है। जीवन से कोई भी छोटी-सी बात उठाते हैं और कहानी आगे बढ़ने लगती है।

आत्मकथा में वस्तुगत तथ्य के उपयोग का एक विशिष्ट अर्थ होता है। सतर्क रचनाकार सोच-समझकर इनका उपयोग करता है। उसे इस बात का अंदाज़ होता है कि जाति, परिवार और समाज के कौन-से संदर्भ उसकी कृति के स्वरूप को व्यापक बनाने में मदद कर सकते हैं और कौन-से अनावश्यक विस्तार। **'क्या भूलूँ क्या याद करूँ'** में बच्चन ने इन संदर्भों का उपयोग बहुत ही सोच-समझकर किया है और इससे उनकी कृति के स्वरूप को व्यापक बनाने में मदद मिली है। यही कारण है कि उनकी यह आत्मकथा महत्वपूर्ण बन पड़ी है।

गद्य क अन्य विधाओं में लेखक दूसरों की जिंदगी, जीवन-संघर्ष, उपलब्धियों आदि के बारे में लिखता है। इसलिए उन विधाओं की रचना प्रक्रिया के तत्व और उनके स्वरूप निश्चित होते हैं चाहे वह नाटक हो या कहानी, उपन्यास हो अथवा जीवनी। परंतु आत्मकथा में लेखक अपनी जिंदगी की कहानी खुद लिखता है। इसलिए इसकी रचना-प्रक्रिया के तत्व अन्य विधाओं के समान होते हुए भी अपनी प्रस्तुति में भिन्न होते हैं। कथानक, चरित्र, भाषा, देशकाल, कथोपकथन आदि जैसे प्रचलित रचना-तत्व इसमें भी होते हैं पर आत्मकथा में इनकी प्रस्तुति एक निश्चित संदर्भ में होती है। उदाहरण के लिए हम देशकाल को ले सकते हैं। गद्य की अन्य विधा में देशकाल के चित्रण का जो अर्थ होगा, वही आत्मकथा में नहीं हो सकता है। आत्मकथा में लेखक उन्हीं घटनाओं और स्थितियों का वर्णन करता है जिनका गहरा संबंध उसकी जिंदगी से होता है। इसलिए आत्मकथा का सीधा अर्थ 'अपनी कहानी' माना जाता है, जिसमें लेखक आपबीती को समकालीन जीवन और संसार से जोड़कर चित्रित करता है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में हरिवंशराय बच्चन ने यही किया है। उन्होंने अपनी जिंदगी की कहानी तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों के साथ जोड़कर लिखी है। इसी प्रकार, आत्मकथा की रचना में लेखक गद्य की अन्य विधाओं के प्रचलित तत्व के साथ ही कुछ खास बातों पर ध्यान देता है जैसे - तटस्थता, आत्मालोचन, युगीन परिवेश के साथ

उसका संबंध आदि। ये आत्मकथा के कुछ खास तत्व हैं। इनके बिना आत्मकथा की रचना संभव नहीं है।

सबसे पहले, तटस्थता। तटस्थता आत्मकथा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में हरिवंश राय बच्चन ने तटस्थ होकर अपनी जिंदगी की कहानी लिखी है। हरिवंश राय बच्चन की यह आत्मकथा मुख्यतः इलाहाबाद की स्मृतियों पर आधारित है जिसमें लेखक ने अपने जीवन की अच्छी-बुरी सभी प्रकार की घटनाओं का वर्णन किया है। लेखक ने आत्मकथा का यह भाग 1963 से 1969 के बीच लिखा है, जब उसकी उम्र छप्पन वर्ष के आसपास होगी। इसलिए यह संभव है कि लेखक की स्मृति में बहुत सारी घटनाएँ नहीं रही होगी अथवा होगी भी तो वह उन्हें एक दूरी से स्मरण करता है। पर, जहाँ भी उसकी स्मृति स्पष्ट नहीं है उसकी चर्चा करके छोड़ देता है अथवा जब विस्तार से उन पर बात करता है, तब उन घटनाओं और स्थितियों के प्रति आत्मालोचन की प्रक्रिया अपनाता है। यह आत्मालोचन ही है जो **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक को अनावश्यक विस्तार और आत्म-मुग्धता से बचाता है। वह भावुकता के साथ स्थितियों का चित्रण जरूर करता है और इस क्रम में आवेश तथा उत्साह में बिताए गए क्षण एवं संपर्क में आए लोगों की सीमा से बाहर जाकर मदद करता है। पर बाद में जब उसे अपनी गलती का अहसास होता है तब अपने इस स्वभाव की आलोचना भी करता है। उसके आत्मलोचन की यह निमर्म प्रक्रिया ही है कि चंपा, श्रीकृष्ण सूरी, प्रकाशों आदि के साथ बिताए गए अपने भावुकतापूर्ण समय का निष्पक्ष मूलयांकन करता है और गलतियों को स्वीकार करता है।

आत्मालोचन की यह सतत संवेदनशील और निमर्म प्रक्रिया बच्चन की इस आत्मकथा में अनेक जगह दिखलाई पड़ती है जो लेखक की बात को प्रामाणिक ही नहीं, प्राणवान और स्थायी मूल्य का बना देती है।

युगीन सत्य के साथ लेखक के संबंध का चित्रण आत्मकथा के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में हरिवंश राय बच्चन ने अपन जीवन के जिस काल-खंड का चित्रण किया है, वह 1936 तक आते-आते समाप्त हो जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में सुधार तथा स्वाधीनता आंदोलन का माना जाता है। 1857 के गदर के बाद एक तरफ भारतीय समाज जहाँ अनमेल विवाह, विधवा जीवन, छूत-अछूत आदि के खिलाफ राष्ट्रीय-व्यापी सुधार के दौर से गुज़र रहा था, वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिशकालीन भारतीय राजनीति में क्रांतिकारी गतिविधियाँ और गांधी के अछूताद्धार से लेकर राष्ट्रीय मुक्ति के लिए किए जा रहे आंदोलनों के काल के रूप में जाना जाता है। इसी प्रकार, साहित्य में समाज और राष्ट्र से जुड़ने की गंभीर चेतना इस काल की रचनाओं में दिखलाई पड़ती है। इस दृष्टि से बच्चन की यह आत्मकथा अत्यंत महत्वपूर्ण है।

वास्तव में आत्मकथा लेखन एक जटिल प्रक्रिया है। इसीलिए **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** की रचना करते-करते लेखक कई जगह ठहर जाता है। खासकर उन प्रसंगों में जिनका गहरा संबंध उसकी निजी जिंदगी से रहा है। कारण, वह तय नहीं कर पाता है कि किस हद तक जीवन की सच्चाइयों को सार्वजनिक करे और किस हद तक नहीं। क्योंकि कई बार निजी जिंदगी की बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं, जिसे लेखक सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए प्रकट नहीं कर पाता है, सिर्फ संकेत करके छोड़ देता है। यह एक हद तक ठीक भी है। इससे कृति की गरिमा बनी रहती है। चंपा और प्रकाशो से अपने संबंधों की बातें बच्चन एक सीमा तक ही प्रकट करते हैं और शेष बातें संकेत करके छोड़ देते हैं। इसी प्रकार आत्मालोचन की प्रक्रिया की भी एक सीमा होती है। उसमें भावुकता की जगह विचार का स्थान अधिक होता है। यद्यपि कई जगह **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखक आत्मालोचन की प्रक्रिया में अत्यंत भावुक हो उठता है, चाहे वह श्यामा पर पूरा ध्यान न दे पाने की बात हो या पं. रामचरण शुक्ल द्वारा अपने पिता की आर्थिक मदद करने का प्रसंग। पर, शीघ्र ही वह संभल जाता है और इसे

जीवन का एक सच मानकर आगे बढ़ जाता है। यही कारण है कि रचना में आए ये सारे प्रसंग बच्चन की इस आत्मकथा और उसके स्वरूप को व्यापक बनाते हैं।

23.6 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' का महत्व और उपयोगिता

क्या भूलूँ क्या याद करूँ का प्रथम संस्करण 1969 में निकला था और तब से अब तक इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। उसके पूर्व तथा बाद में हिंदी में अनेक आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं, जिन्होंने हिर्दी भाषी समाज को अपनी ओर आकर्षित किया। जैसे - बाबू श्याम सुंदर दास कृत हिंदी की पहली आत्मकथा 'मेरी आत्मकहानी' (1941), राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी जीवन यात्रा' (1946), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत 'मेरी अपनी कथा (1958), सेठ गोविंददास कृत 'आत्मनिरीक्षण' (1958), पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कृत 'अपनी खबर' (1960), आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'मेरी आत्मकहानी' (1963) आदि। हिंदी में इन आत्मकथाओं की अलग-अलग महत्ता और उपयोगिता है। उदारहण के लिए इनमें बाबू श्यामसुंदर दास की 'मेरी आत्मकहानी' जहाँ बनारस और उसमें भी नागरी प्रचारिणी सभा के जीवंन से जुड़ी सच्चाइयों से हमारा परिचय कराती है, वहां पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर' यह बतलाती है कि अपने जीवन की सच्चाइयों को किस प्रकार प्रकट किया जाता है। पर बच्चन की आत्मकथा इस मायने में अलग है। यह एक तरफ जहाँ आत्मकथा की उस संस्कृति से हमारा परिचय कराती है जिसकी जरूरत कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं में भी कथाकार महसूस नहीं करते, वहीं दूसरी तरफ उनके काव्य-साहित्य के मूल्यांकन के लिए अनेक ऐसे स्रोतों की जानकारी देती है जिनके विषय में हिंदी साहित्य अब तक अनभिज्ञ था। उदाहरण के लिए बच्चन अपनी कविताओं को जिस 'संयम के विस्फोट' से जोड़ते हैं, उसे बिना '**क्या भूलूँ क्या याद करूँ**' को पढ़े समझा नहीं जा सकता है।

हरिवंश राय बच्चन की इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है अपने जीवन के अनेक रूपों की संदर्भ सहित व्याख्या, जो कि अन्य आत्मकथाओं में कम ही उपलब्ध होती है। बीच-बीच में वे अपने लेखन, सृजन-प्रक्रिया, प्रकाशन, साहित्यिक विकास, गोष्ठियों-सम्मेलनों आदि की चर्चा करते हैं और इन प्रसंगों से अपने आपको जोड़ते हुए तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का चित्रण करते हैं। सामान्य शब्दों में, **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का कथ्य लेखक का रचनात्मक विकास नहीं, बल्कि उनके रचनात्मक व्यक्तित्व का विकास दिखलाता है जिसे वह जाति, वंश, परंपरा और परिवार के कठिन जीवन-संघर्ष के साथ जोड़कर प्रस्तुत करता है। इस क्रम में वह ऐसे अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करता है जिनका गहरा संबंध उसके व्यक्तिगत जीवन से रहा है। चाहे वह चंपा से प्रेम का प्रसंग हो अथवा श्यामा से संयमपूर्ण व्यवहार का। बिना किसी संकोच के वह अपने जीवन के इस 'सच' को प्रकट करता है।

वास्तव में हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का यह पहला भाग उनकी पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक की जिंदगी को संपूर्णता में उपस्थित करता है चाहे वह परिवार हो या युगीन परिवेश, परंपरा हो अथवा समाज। क्या बाबा, क्या राधा बुआ, क्या कर्कल, क्या चंपा, क्या प्रकाशो और क्या श्रीकृष्ण सूरी - श्यामा के साथ ही उसकी जिंदगी में आए ये सारे लोग लोक के जीवन और उसकी सोच को विस्तार देते हैं और समय तथा समाज के साथ जोड़ते हुए फ्रांसीसी लेखक मानतेन के शब्दो में उसकी निजी जिंदगी की विशिष्टता को हमारे सामने संपूर्णता में उपस्थित कर देते हैं। आत्मकथाकार न तो अपन जीवन के दोषों को छुपाता है और न ही गुणों को। अपने सरल, सहज और साधारण जीवन स्वरूप को वह अत्यंत स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत करता है। शायद यही कारण है कि साहित्य की अन्य विधाओं की तरह इस कृति में कहीं भी उस तरह के उतार-चढ़ाव अथवा क्लाइमैक्स के दर्शन नहीं होते हैं जैसा कि अन्यत्र होता है। बस है तो सिर्फ लेखक का सच्चा और संवेदनशील जीवन - जिसमें कुछ सुख है तो बहुत सारे दुःख भी। वह न तो किसी को त्यागता है और न ही किसी के प्रति अतिशय आग्रह दिखलाता है। सब कुछ समान रूप और गति से इस आत्मकथा में दर्ज हुआ है। भाषा में वर्णनात्मकता

और पात्र तथा परिवेश के अनुकूल शब्दों का चयन एवं प्रयोग इस कृति को महत्वपूर्ण बनाते हैं। एक सर्जनात्मक व्यक्तित्व के विकास और मार्मिक गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ**, जिसे बार-बार पढ़ना अच्छा लगता है।

23.7 सारांश

हरिवंशराय बच्चन की **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** पर केंद्रित इस इकाई में उनकी आत्मकथा के पहले भाग पर विचार किया गया है जिसमें लेखक के जन्म से लेकर पहली पत्नी श्यामा की मृत्यु तक का मार्मिक वर्णन है। यह सही है कि आत्मकथाकार का अपना एक समाज और अपनी एक संस्कृति होती है। बिना उससे टकराये, आत्मकथा की रचना संभव नहीं है। और वह संस्कृति है अपने जीवन की सच्चाइयों का यथार्थ चित्रण। लेखक, आत्मकथा लेखन के बहाने समाज और संस्कृति के इस 'सच' से टकराता है। बच्चन भी उस आत्मकथा में बार-बार अपने जीवन की सच्चाइयों से टकराते हैं। इस इकाई को पढ़कर आप उनके जीवन के इस 'सच' और इससे टकराने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

यह सही है कि लेखक के जीवन में बहुत सारी बातें ऐसी होती है जिसे वह कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, निबंध जैसी प्रचलित विधाओं में व्यक्त नहीं कर पाता है। खासकर जीवन की वैसी सच्चाइयाँ जो समाज और लेखन की मर्यादाओं से अनुशासित होती हैं। बच्चन अपने जीवन के जिस सच को प्रकट करना चाहते हैं, उसके लिए उपर्युक्त विधा आत्मकथा ही है। कारण, आत्मकथा की संरचना ऐसी होती है कि लेखक उसमें एक सीमा तक छूट ले सकता है। चाहे वह जाति का प्रसंग हो अथवा समाज का। व्यक्ति हो अथवा परिवार का। वह इसमें कथा कहने की भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग कर सकता है। इस इकाई को पढ़कर आप देखेंगे कि बच्चन लेखन के स्तर पर रचना की अनेक शैलियों का प्रयोग करते हैं और आत्मकथा को रोचक, पठनीय तथा प्राणवान बनाते हैं।

आत्मकथा में न ही कोई विषयवस्तु निर्धारित हेती है और न ही अंतर्वस्तु। पर लेखक इस बात का ध्यान रखता है कि जो भी प्रसंग अथवा घटनाएँ चित्रित हो, उससे उसके जीवन का सीधा जुड़ाव हो। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में बच्चन ब्रिटिशकालीन भारतीय जीवन के ऐसे अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करते हैं जिनका गहरा संबंध तत्कालीन समाज से है। पर, उन्हें वे अपने जीवन से जोड़कर देखते हैं। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक परिवेश किस स्तर पर एक लेखक को प्रभावित करते हैं, और उनका चित्रणा आत्मकथात्मक कृति में वह किस प्रकार करता है, इस इकाई को पढ़कर देखा जा सकता है।

विचार तथा थोड़ा और स्पष्ट करें तो दृष्टिकोण का रचनाकार के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पर बड़ा रचनाकार अपनी दृष्टि को रचना पर आरोपित नहीं करता है बल्कि घटनाओं और प्रसंगों के माध्यम से अपने विचारों को स्पष्ट कर देता है। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में बच्चन सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं, समस्याओं आदि के खिलाफ और रचना तथा रचनाकार के बारे में जगह-जगह अपनी राय व्यक्त करते हैं। इस इकाई को पढ़कर आप देखेंगे कि बच्चन अपने भावों और विचारों को किसी घटना अथवा प्रसंग के साथ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं - सीधे-सीधे आरोपित नहीं। उसका औचित्य बतलाते हैं और मानवीय मूल्यों के आधार पर उन्हें मानने और समझने की वकालत करते हैं।

निष्कर्षतः हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का यह पहला भाग एक लेखक के लेखकीय व्यक्तित्व के बनन की प्रक्रिया से हमें परिचित करता है। इस क्रम में उसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर टिप्पणी करता है तथा यह बतलाता है कि लेखन के लिए जितनी ज़रूरत सामाजिक प्रतिबद्धता की होती है, उतनी निजी जिंदगी में ईमानदारी की भी। बिना

अपनी निजी जिंदगी में ईमानदार हुए कोई भी लेखक अपने समाज के 'संपूर्ण सच' को प्रकट करने का दावा नहीं कर सकता। **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** के माध्यम से लेखक ने इस सच को प्रकट करने का साहस पाठक सामज के सामने किया है और यही इस आत्मकथा की सबसे बड़ी विशेषता है।

अभ्यास

1. आत्मकथा की विशेषताओं के संदर्भ में **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** का मूल्यांकन कीजिए।
2. **क्या भूलूँ क्या याद करूँ** में लेखकीय दृष्टिकोण का विवेचनात्मक उल्लेख कीजिए।
3. उक्त आत्मकथा की संरचनात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।